मानव मन्दिर

8/1993

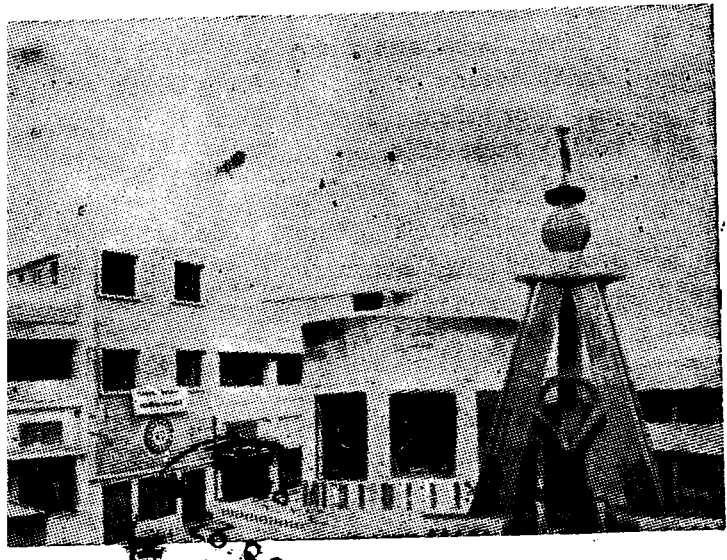

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur.
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Ravi Nanda
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Hoshiarpur.
Editor's Name	Ravi Nanda
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Sutehti Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Ravi Nanda hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 Signature of Publisher

Printed and Published by : Ravi Nanda at
Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur
for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में अगला मासिक सत्संग
29-8-93 को होगा ।

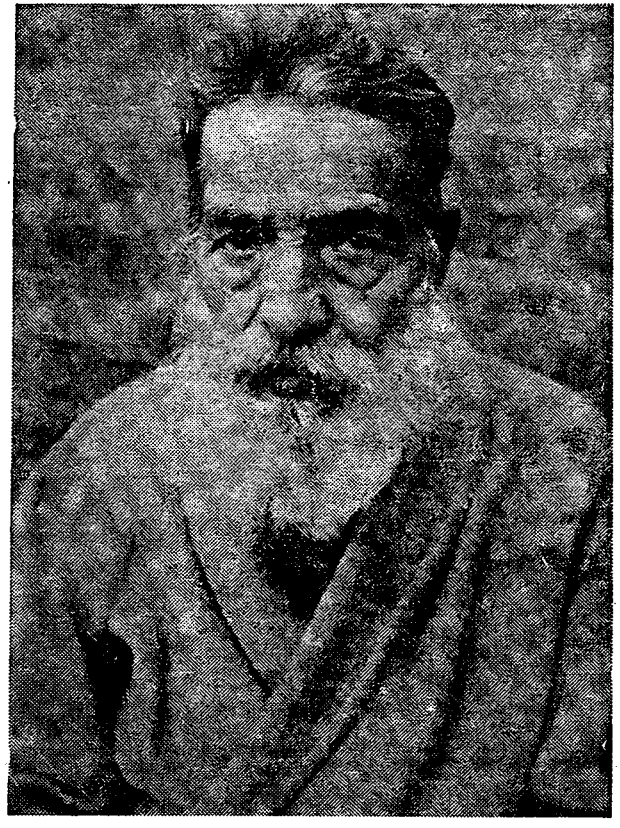

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

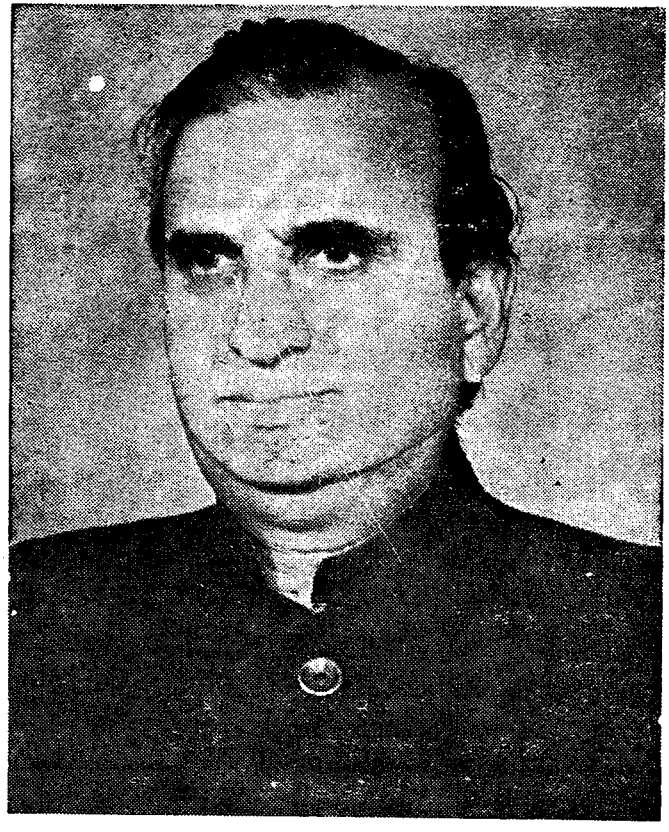

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक---

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN
मनुष्य बनो

सम्पादक :
श्री रवि नन्दा

वर्ष 20 | मंगलवार 10 अगस्त, 1993 | संख्या 4

परम सन्त दाता दयाल महर्षि शिव ब्रत लाल जी महाराज

साहब के दरबार में, कमी कछु को नांहि।
बन्दा मौज न पावही, चूक चाकरी माँहि॥

मंसूर ने हक कहा, दार पर खींचा गया। शम्श तबरेज़ ने सार वस्तु का परदा उठा लिया, जान से मारा गया। सरमद ने उन्मत्त अवस्था में आ कर, असली भेद की गवाही दी और शहीद हुआ, मारा गया। ऐ मनुष्य! इस संसार में तेरी ज़ात सबसे निराली है। तू ही पैदा करने वाला, मारने वाला और स्थिर करने वाला है। तू अपनी हैसियत तथा निराली शान को भ्रम के पर्दे पड़े हुए के कारण देख नहीं सकता। तुझको अपने निज रूप का ज्ञान नहीं है, क्योंकि माया और अविद्या ने तुम्हें घेर रखा है। जिसका मुख्य कारण भी तू स्वयं है।

"खुद बखुद आज़ाद बूदी,
खुद गिरफ्तार आमदी।'
अर्थात् "स्वयं ही तुम स्वतन्त्र हुए,
और स्वयं ही बन्धन में पड़े।"

संसार में ऐसी क्या बात है जो तू नहीं करता अथवा नहीं कर सकता, केवल समझ लेने की ही देर है, फिर प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियां तेरी ओर आकर्षित हो जायेंगी और तेरी बन्दगी का दम भरने लगेंगी। समय था तूने ही अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा बड़ी 2 दिव्य शक्तियों को खेंच कर अपने आधीन कर लिया था। राम और कृष्ण का उत्पन्न करने वाला तू स्वयं ही है और जिसको कलकी [कंलकी] अवतार कहा जाता है, उसको तू स्वयं ही आवश्यकतानुसार समय पर उत्पन्न कर लेगा। आज शायद तुमको मेरी बात समझ में नहीं आ रही, परन्तु समय आ रहा है, जब तुमको मनुष्य के विकास तथा चमत्कार का साक्षात्कार होगा।

मनुष्य की महानता तथा श्रेष्ठता का वर्णन कौन कर सकता है? देवता और फ़रिश्ते भी असमर्थ हैं। सरस्वती और ब्रह्मा तक में भी समर्थ नहीं है।

"बावजूदे कि परो बल न थे आदम के।
पहुंचा उस जा कि फ़रिशतों का भी मक़दूर न था॥

अर्थात् "यद्यपि आदम या मनुष्य के पंख व बाल नहीं हैं, फिर भी वह वहां पहुंच गया, जहां फ़रिश्तों तक की ग़म नहीं थी।"

वास्तव में, यह संसार विचित्र व विलक्षण है। ईश्वरीय सृष्टि व कारीगरी के नमूने का तो क्या कहना है! हिमालय सरीखा विशाल पर्वत कैसी सुन्दरता से खड़ा हुआ, आकाश से बातें कर रहा है। इसके सिर पर बर्फ की चमकती हुई

उज्जवल टोपी कैसी सुन्दर लगती है। सूर्य की किरणें इससे मिल कर किस प्रकार इन्द्रधनुष का मनोहर दृश्य दिखलाती हैं! पहाड़ की तराई में कैसे 2 सुन्दर व मनोहर फूलों के वृक्ष लगे हुए हैं। बरसात में सारा पहाड़ हराभरा हो जाता है। ऐसा लगता है कि मानो महान हिमाचल भड़कीला वस्त्र धारण किए हुए, गोलार्ध के प्रधान शासक के रूप में खड़ा हुआ, अपने विस्तृत राज्य का निरीक्षण कर रहा है। गंगा की धारें बह रही हैं। जिस समम पहाड़ की चोटियों से पानी की धार नीचे की ओर उतरती है मस्त व झूमते हुए हाथियों की पंक्ति के खेल के दृश्य आंखों के सामने आ जाते हैं। यह सब सुन्दर हैं, इन सब की सुन्दरता में किंचित सन्देह नहीं। कोई क्या देखे और क्या न देखे? ईश्वर की माया अपम्मपार है। जिस ओर भी दृष्टि जाती है उस ओर ही विस्मय में पड़ जाती है, किन्तु इस बाह्य जगत् से कहीं विशाल, कहीं अधिक मनोहर और कहीं अधिक चित को आकर्षित करने वाला मनुष्य का हृदय है। हिमालय की ऊंचाई, पृथ्वी का विस्तार यह सब उसके सामने तुच्छ है।

मनुष्य का हृदय क्या है? क्या कोई इसकी थाह पा सकता है? इसमें ब्रह्मा वेद पढ़ते हैं, इसमें बैठ कर विष्णु पालन पोषण कर रहे हैं और इसमें ही शिव त्रिशूल लिए हुए संहार के कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। इसी में ही सारा ब्रह्माण्ड गुप्त है। इसी में ही समुद्र लहरें मारता है। इसी में ही आकाश अपने विस्तार का तमाशा दिखाता है। यह मनुष्य हृदय सबसे अधिक विचित्र और सबसे अधिक आश्चर्यजनक है। परन्तु मनुष्य अपने हृदय की विशालता

को जानता नहीं।

"ऐ तमाशा गाह आलम रूय तो।
तू कूजा बहरे तमाशा भी रची ॥"

"अर्थात् ऐ मनुष्य! तू ही संसार के सभी तमाशों का अविष्कारक है। फिर तू स्वयं किस तमाशे के लिए कहां जाता है?

क्या कभी तुमने अपने मन के साहस और शक्ति पर विचार किया है। तुम इसको परिमित और संकीर्ण भले ही समझो, परन्तु मैं नहीं समझता। जिसमें इतनी शक्ति तथा विस्तार हो कि वह अपरिमित और सर्वव्यापक को अपने में समेटने की समर्थ रखता हो, उसको कैसे परिमित कहा जा सकता है।

इस मन के हज़ारों रूप हैं। जो कुछ है मनुष्य का मन ही है। यही अमीर है, यही फ़कीर है, यही राजा है, यही रंक है, यही मुक्त है, यही बुद्ध है, यही शुद्ध है, यही अशुद्ध है।

"मन मोटा मन पातला,
मन पानी मन लाय।
मन की जैसी उपजे,
तैसे ही हो जाय ॥

यही मन इस जगत् का पैदा करने वाला है और प्रत्येक स्थान पर इसका विकास है। यह चाहे तो ग़रीब बना

दे, चाहे तो अमीर बना दे। यह अपने में वासना उत्पन्न करके, राग के आकर्षण से संसार की वस्तुओं को अपनी ओर खेंच लेता है और धनवान हो जाता है। जब यह वासना को दूर कर देता है तो कोई वस्तु इसके पास नहीं आती और वह धनवान से निर्धन बन जाता है। अत: धनवान या निर्धन होना, केवल हमारे और तुम्हारे मन की अवस्था पर ही निर्भर है। जब तुम अपने को निर्बल तथा निर्धन समझ लेते हो, तो वैसे ही हो गए। जब तुमने अपने को शक्तिशाली समझा तो सारी शक्तियां तुम्हारे आस पास एकत्रित हो जाती हैं, और तुम शक्तिशाली बन जाते हो। इस मन में आकर्षण की दो शक्तियां हैं, जिनको राग तथा द्वेष कहा जाता है। विज्ञान में अंग्रेज़ी भाषा में इन्हीं को सेन्ट्रीपीटेल तथा 'सेन्ट्रीफ्यूगल' शक्तियां कहते हैं। वास्तव में, यह दोनों एक ही हैं केवल प्रगट करने की विधि में ही भिन्नता है। जिस समय इन दोनों शक्तियों से काम लेने की योग्यता आ जाती है, फिर मनुष्य स्वयं हर प्रकार की शक्तियों का भण्डार हो जाता है।

सारा दु:ख अविद्या और अज्ञानता के कारण ही होता है। विद्या शक्ति है और अपने निजरूप की विद्या [ज्ञान] सबसे महान शक्ति है। इसमें सन्देह नहीं कि सांसारिक विद्या का जानने वाला, साधारण मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली होता है। एक मनुष्य जिसको घोड़े पर चढ़ने का ज्ञान है और वह घोड़े की पीठ पर जम कर बैठना और लगाम को ठीक तरह से हाथ में रखना जानता है, वह साधारण मनुष्यों से कहीं अधिक तीव्रगति

से घोड़े को चला सकता है। बन्दूक व तोप रखने वाला व्यक्ति कितने मनुष्यों पर आधिपत्य रखता है। इस प्रकार के एक 2 मनुष्य में हज़ार - 2 मनुष्यों की ताकत होती है। परन्तु इन सब से शक्तिशाली वह मनुष्य है, जिसको आत्मा का ज्ञान है। इसी आत्मा के ज्ञान ने ही हनुमान को बजरंगी बना दिया, जिस पर किसी भी प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसी आत्मविद्या ने ऋषि अगस्त को समुद्र व जल के भय से निर्भय बना दिया था। इसी आत्म-विद्या द्वारा ऋषि मुनि संसार के तख्तों को पलट सकते थे। इसी आत्मा के ज्ञान से महान कपिल ने सगर की सन्तानों को जला कर धूल व राख कर दिया था। दुर्भाग्यवश, उस आत्मविद्या का इस समय लोप हो रहा है और आज ऋषि सन्तान कुत्तों और गीदड़ों की अवस्था को प्राप्त हो गई। अज्ञान के घटा टोप अन्धकार ने इतना पांव पसारा है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता। जहाँ अविद्या है वह दुःख होगा ही।

"राम तेरी माया द्वन्द मचाये"

यह संसार प्रकृति से बना है। जो कुछ दृष्टि में आता है, जो नहीं दिख पड़ता, जिसको हम सोचते हैं और जिसको हम सोच भी नहीं सकते वह सब प्रकृति ही है। प्रकृति सब में भरी है, चाहे कोई वस्तु बड़ी हो या छोटी, वह सब में है प्रकृति के लिए और अधिक उपयुक्त और सरल शब्द है "लक्ष्मी"। यह जगत् जो तुम देख रहे हो लक्ष्मी रूप है और इसको तुम लक्ष्मी का भण्डार भी कह सकते हो।

यह प्रकृति भी अणुओं और परमाणुओं का रूप ग्रहण करती है यह सृष्टि परमाणुओं से बनी है। मनुष्य, पशु, खनिज पदार्थ, वनस्पति सब परमाणु अर्थात् अणुओं के भण्डार हैं। इन परमाणुओं द्वारा बने हुए रूपों में सबसे अधिक सुन्दर, सबसे श्रेष्ठ सबसे अधिक शक्तिशाली रूप का नाम मनुष्य है। वह आकर्षण का केन्द्र बन कर, प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खींचे हुए है। लोग कहते हैं सूर्य ने अपने सूर्य मण्डल के विस्तृत गोलार्ध में अपने आस पास के अनेक गोलार्धों को खींच रखा है। इसी प्रकार, मनुष्य भी जिस वस्तु को चाहता है, अपने पास खींच लेता है। वह सूर्य है और अपने विचार मात्र से वह जिस चीज़ को चाहे अपनी ओर खींच सकता है। उसका विचार बिजली से अधिक तेज़, प्रकाश से अधिक दीप्तिमान और कौंधे से अधिक चमकीला है। सिद्धि का इच्छुक मन्त्र जपता हुआ, जिस चीज़ को चाहे प्राप्त कर सकता है। मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र वास्तव में कुछ नहीं। वे मनुष्य की संकल्पशक्ति को दृढ़ करने, उसको वीर तथा निर्भय बनाने और लक्ष्मी भण्डार से परमाणुओं को खींचने के साधनमात्र हैं। वास्तविकता तो उसकी संकल्प शक्ति में है, उसके विचार तथा विचारशक्ति में है। जब संकल्प शक्ति बढ़ जाती है, शक्तिशाली परमाणु उसके हृदय में समा जाते हैं, फिर वही मनुष्य सिंह के जबड़े को पकड़ कर फाड़ डालने का साहस करता है। उसमें उच्च कोटि का साहस आ जाता है, उत्साह आ जाता है। यह रहस्य आपको स्वास्थ्य, सम्पत्ति और सुन्दरता इत्यादि के विषयों में छिपा हुआ मिलेगा।

यदि किसी मनुष्य को अपने विचार, अपने हृदय अपनी प्रतिज्ञा और अपने संकल्प पर पूरा विचार नहीं है, तो समझ लो कि वह बीमार होगा, निर्धन रहेगा, जबानी में बूढ़ा दिखाई देगा और संसार उसको अपने पांव का फुटबाल बना देगा। यदि उसको अपने बाहुबल पर विश्वास है, उसकी संकल्प शक्ति दृढ़ है, उसके विचार शुद्ध तथा ऊंचे हैं तो उसकी सभी इच्छायें पूरी हो जायेंगी यदि वह स्वास्थ्य चाहेगा, तो वह अपनी संकल्प शक्ति के द्वारा, लक्ष्मी भण्डार से स्वास्थ्य के परमाणुओं खींच - २ कर स्वास्थ्य हो जायेगा, शक्तिशाली हो जायेगा। यदि वह सम्पत्ति का इच्छुक है, तो धनवान हो जाएगा। यदि वह सम्मान और प्रतिष्ठा की ओर ध्यान देगा, तो विचार के नियम के अन्तर्गत, वह अपने में ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेगा कि संसार उसका सम्मान करने और उसके पांव पढ़ने के लिए बाध्य हो जायेगा। यही विचार मुअक्किल, यही विचार जिन्न व फ़रिश्ते, यही विचार हमज़ाद और छाया पुरुष हैं। जो इस विचार विज्ञान को समझते हैं उनको समझाना मुश्किल नहीं है।

जो संसार में माननीय हैं, उसका कारण यह नहीं कि ईश्वर ने उनको माननीय बनाया, बल्कि वह माननीय इसलिए हैं कि उनमें आत्म-सम्मान है, और वह अपना मान आप करते हैं और जहां जहां वे जातें हैं, दूसरे के हृदय से सम्मान के परमाणु निकल कर, उनके हृदय को सहानुभूति दे कर, अंग संग हो जाते हैं। जो अपमानित हैं, उनको ईश्वर ने अपमानी नहीं बनाया, किन्तु वह अपने हृदय में स्वयं अपमान की भावना से बने। जो अपमानित न होना चाहे, उसका कोई भी अनादर नहीं कर सकता। जो सम्मान कराना चाहे, संसार उसके पांव चूमने के लिए बाह्य हो जाता है।

मनुष्य की बाहरी अवस्था, उसकी मानसिक तथा

दिमागी अवस्था का प्रतिबिम्बित चित्र है। आंखों के देखने से पता चल जाता है कि व्यक्ति के मन में विचारधाराओं का प्रवाह कैसा है। संसार का एक महान श्रेष्ठ आचार्य ढाई हज़ार वर्ष पहले उच्च स्वर से घोषित कर गया कि "तुम जो चाहते हो, वही हो जाते हो।"

कबीर साहब कहते हैं :

"मन की जैसी उपजे, तैसे ही हो जाय।"

हमको कोई भी परिमित नहीं कर सकता, बल्कि हम स्वयं सिकुड़ कर परिमित हो जाते हैं। यह प्रकृति का और लक्ष्मी भण्डार का अटल नियम है। हिन्दू आज संसार में क्यों दु:खी हैं ? क्योंकि वे अपने विचार से दु:ख के परमाणु खींच रहे हैं। ज़ात पात व छूतछात का असली मतलब न समझ कर आपस में एक दूसरे से घृणा करते हैं।

जब आपस में परस्पर घृणा है तो यह कैसे सम्भव है कि ऐसे व्यक्तियों को सम्मान मिले ? यदि प्रबल इच्छा करने पर भी आपके उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती, तो लक्ष्मी भण्डार के नियम को न कोसो। अपने हृदय की तह में घुस कर उससे पूछो "क्या कमी है तुम में ?" कहीं न कहीं, कोई न कोई कमी है अवश्य, नहीं तो मज़ाल क्या है कि व्यक्ति लक्ष्मी भण्डार से कुछ मांगे और लक्ष्मी उसकी सुने नहीं। लक्ष्मी भण्डार में किसी भी वस्तु की कमी नहीं। सारा दोष तो अपने विचार का, अपने मन का, अपनी समझ बूझ का

और अपनी ही संकल्प शक्ति का है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर तुम्हारे अपने हृदय में ही है। जो भी काम करो अपने मन की सारी शक्ति उसी में ही लगा दो, देखो काम होता है कि नहीं।

ईश्वर में न तो अत्याचार है, न अन्याय। उसकी दृष्टि में सब की अवस्था एक समान है। उसकी दात का हाथ प्रत्येक समय खुला रहता है :

फैलायेगा क्या कोई परवर दिग़ार हाथ।
बन्दा का एक हाथ है, तेरे हज़ार हाथ॥

यदि हमको उसकी दात प्राप्त नहीं, तो यह दोष हमारा है। मुस्कराती हुई लक्ष्मी हाथ में सारी सामग्री लिए हुए खड़ी है, तुम लेते क्यों नहीं? यदि तुमको स्वयं लेना नहीं आता, तो फिर उसमें ईश्वर का क्या दोष है? वह उनकी सहायता कैसे कर सकता है, जो अपनो सहायता आप नहीं कर संकते। तुम एक हाथ फैलाओ, वह हज़ार हाथ से देगा।

सारा दोष हमारा है, लक्ष्मी भण्डार का नहीं। हमारे जीवन परिमित, हमारे विचार संकीर्ण, हमारी बुद्धि अल्पदर्शी और हमारा मस्तिष्क अन्धकारमय है। अज्ञान के कारण हम सिकुड़ते 2 इतने सिकुड़ गए कि दरिद्रता, बीमारी, वृद्धावस्था और मृत्यु ने हमको घेर लिया, वरन् आत्मा को तो न बीमारी आती है, न दरिद्रता आती है, न वृद्धावस्था सताती है न मृत्यु की आशंका

सताती है।

हम आपको समझा देना चाहते हैं कि मनुष्य अनुकूल परमाणुओं को अपने मन और मस्तिष्क की ओर कैसे आकर्षित करता है। यदि आप किसी महात्मा के पास श्रद्धा ले कर जाओ तो आप देखोगे कि वह प्रसन्न हो कर तुम्हारे दुःख दर्द को मिटा देता है, या यूं कहो भुला देता है। ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि तुम्हारी श्रद्धा के विचारों की धार, मस्तिष्क से निकल कर, आस पास के विरोध करने वाले विचारों को दबाती गई। अनुकूल विचारों के परमाणुओं को पुष्टि मिली और उसने महात्मा के हृदय को स्पर्श किया और वहां से श्रद्धा की अमृत धार को खींच लाई और आप सुखी हो गए।

"मांगो और तुमको मिलेगा।", "दरवाज़ा खटखटाओ, द्वार खोल दिया जायेगा।" यह अमर वचन ईसा मसीह के हैं। कितने सच्चे हैं। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि न तो हमें मांगना ही आता है और न ही दरवाजा खटखटाना। लक्ष्मी विचारी आए तो कैसे आए हमारे पास? एक सूफ़ी कवि ने कहा है, "जब तक बच्चा रोता नहीं, माता की छाती में दूध नहीं उतरता?"

मेरे मकान में एक बिल्ली ने बच्चा दे रखा है। मैं बहुधा देखता हूं कि जहां बच्चा थोड़ा भी चिल्लाया, बिल्ली दरवाजा खोल कर, लांघती हुई झट से मौजूद हो गई और बच्चे को दूध पिलाने लगी। ठीक यही अवस्था लक्ष्मी माता की भी है, परन्तु अफ़सोस कि आपको तो रोना भी नहीं आता।

संसार रोगी है, दरिद्र है, कंगाल है। खाने को रोटी और तन ढकने को कपड़ा नहीं मिलता। दुर्भिक्ष का कष्ट असह्य है। ताऊन ने बड़ी दुर्दशा कर दी है :

ताऊन से इक तरफ़ है आफ़त बर्पा।
इक स्मित है कहत से मुसीबत बर्पा॥
क्योंकर दिले मज़लूम न फरियाद करे।
जब चारों तरफ हो कयामत बर्पा॥

बेचारा भारत इस समय सबसे दुःखी है। क्यों? क्या स्वयं भारतवासियों ने यह अवस्था अपने में पैदा कर ली? मैं कहूंगा हां। जिस बालक ने माता की गोद का त्याग कर दिया, बस वह मारा गया। इसी प्रकार हमने अपने रूप को न समझ कर, लक्ष्मी माता की गोद का परित्याग कर दिया और कालचक्र ने हमको कलह, क्लेश का लक्ष्य बना लिया। परमसन्त राय सालगराम बहादुर कहते हैं, "पहले मालिके कुल का दामन पकड़ लो, तुमको सब कुछ मिल जाएगा।"

तुम जो चाहो, प्राप्त कर सकते हो, परन्तु शर्त यह है कि उस चीज़ को प्राप्त करने की तुम्हारी इच्छा प्रबल हो, तुममें पवित्रता तथा हृदय की शुद्धता हो। यदि हृष्ट पुष्ट बनना चाहते हो तो स्वास्थ्य और पुष्टता की भावनाओं को हृदय में स्थान दो, स्वस्थ जनों की संगति में बैठो। यदि पवित्र तथा आध्यात्मिक बनना चाहते हो तो किसी महात्मा की सेवा तथा सत्संग में रहो। यदि तुम यह सब भी नहीं कर सकते, तो केवल सच्चे दिल से कामना करो और थोड़े ही दिन बाद, तुम केन्द्र बन कर उद्देश्य को अपनी ओर खींच लोगे।

मन में किसी बात की इच्छा करना, वास्तव में, उन्नति का बीज बोना है। विचार जब पकते-पकते दृढ़ हो जाता है, तब विकास के लिए मार्ग निकालने का इच्छुक होता है। प्रत्येक विचार क्रियात्मक रूप में परिणित होने की इच्छा रखता है और व्यक्ति उसी ही के अनुसार काम काज में लग जाता है और धीरे-धीरे उसकी पूर्ति भी कर लेता है। यह एक नियम है, जो अटल है।

केवल केन्द्र बन कर, अपनी महान आकर्षणशक्ति से हम जिस वस्तु को चाहें खींच सकते हैं। सारा जगत् हमारे विचारों का सम्मान करने के लिए उद्यत है। लक्ष्मी भण्डार अपार है, जिसको जीवन लना हो, वह उससे ले सकता है। जो राज चाहते हैं, उनको राज मिल सकता है। भूखों को तृप्त किया जा सकता है, प्यासों के लिए पानी, वस्त्रहीनों के लिए वस्त्र, रोगियों के लिए औषधि सब उपलब्ध हो सकता है। यहां सब कुछ है, कमी किसी बात की भी नहीं। अतः मेरे प्यारो! यदि तुम में से आज भी किसी का जीवन विशाल नहीं है, तो लक्ष्मी भण्डार के नियम का पालन करो, उसका भली-भाँति अध्ययन करो। आज तुस दुःखी हो, उसकी चिन्ता मत करो, अपनी अपार शक्ति, अपनी आत्मा की असलियत और मन की आकर्षणशक्ति को काम में लाओ केवल अपने रूप को पहचानो, तुमको आनन्द मिलेगा, शान्ति मिलेगी और मोक्ष भी मिलेगा, क्योंकि लक्ष्मी भण्डार में सब के लिए सब कुछ है। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें।

परमार्थ व स्वार्थ प्रदान करने वाली शिक्षा

परमसन्त परमदयाल पण्डित फ़कीर चन्द जी महाराज

का

18 नवम्बर 1979 को मानवता मन्दिर होशियारपुर में दिया गया

सत्संग

हम दीन अधीन दुःखी जीवों को,
चिता दिया सत्गु स्वामी ने।
भव सिन्ध में डूबने वालों को,
तैरा दिया सत्गुरु स्वामी ने।
मद मोह माया के मारे थे,
दुःख आपत्ति से दुखियारे ने।
कर दया दृष्टि छुटकारा इनसे,
दिला दिया सत्गुरु स्वामी ने।
अज्ञान ने भरमाया था हमें,
और करम ने बहकाया था हमें।

सत संगत के बचन से,
भरम मिटा दिया सतगुरु स्वामी ने।
पहले नहीं गुरु गम को जाना,
अब आँख खुली तब पहचाना।
निज रूप का दर्शन अपने घट में,
करा दिया सतगुरु स्वामी ने।
तब पिण्ड को पहुंचा ब्रह्माण्डा,
आगे बढ़ आया सच्च खण्डा।
सतधाम से सत का विमल स्वरूप,
दिखा दिया सतगुरु स्वामी ने।
लख अलख अगम की गम पाई,
ली राधास्वामी की शरनाई।
धुर धाम सत्त विसराम लोक,
पहुंचा दिया सतगुरु स्वामी ने।
राधास्वामी राधास्वामी,
राधास्वामी राधास्वामी।
राधास्वामी के नाम का मरम,
जता दिया सतगुरु स्वामी ने।

मैंने यह शब्द सुना और मैं अपनी आत्मा से पूछता हूं कि जो कुछ यह लिखा हुआ है क्या सत्य है। यदि मैं बिना अनुभव किए हुए दाता दयाल जी की इस वाणी का पक्ष करता हूं तो मैं दोषी हूं, पापी हूं और गुनहगार हूं। मैंने इसे क्या समझा? मैं इसे कैसे सच्च मानता हूं?

हम दीन अधीन दुःखी जीवों को चिता दिया सतगुरु

स्वामी ने। यह दीन दुःखी शब्द तो प्रायः सभी प्रयोग में लाते हैं। मैं भी अपने आपको दीन समझता था। मैं तो क्या सभी अपने आपको दीन समझते हैं, छोटा समझते हैं, कुछ नहीं समझते। मेरी भी यही दशा थी किसी समय। मेरे साथ गुरु ने क्या किया, चिता दिया। चिताना क्या था ? मुझे समझ दे दी कि असलियत क्या है, तू क्या है, कहां से आया है और तेरा क्या परिणाम होगा ? इसे चिताना कहते हैं।

भव सिंध में डूबने वालों को,
तैरा दिया सतगुरु स्वामी ने।

यह सत्य है। मैं इस बात में सतगुरु की झूठी प्रशंसा नहीं कर रहा। यह बिलकुल ठीक है। मैं पहले मन के चक्कर में था। दाता के चरणों में गया। उन्होंने मुझे सम्भाला, मेरे अज्ञान को दूर किया। परन्तु तब भी जब बात पूरी मेरी समझ में नहीं आई तो उन्होंने मुझे सत्संग तथा नामदान देने की आज्ञा दी। जब आप लोगों के सम्पर्क में आया और आप लोगों ने मुझे बताया कि मेरा रूप आपको प्रकट हो कर आपके काम कर जाता है, जबकि मैं वहां होता ही नहीं, तो मुझे पक्का विश्वास हो गया और एक प्रकार से चेतावनी मिली कि मेरे भी अन्दर जो कुछ पैदा होता है या दीखता है, वह असल में कुछ नहीं होता, वह तो केवल संस्कार होते हैं। बस इस विचार से मैं चेत गया।

भव सिंध में डूबने वालों को,
तैरा दिया सतगुरु स्वामी ने।

भव सिन्ध क्या था ? मन रूपी समुन्दर के जो विचार

उठते थे, जिसमें कि हम सुखी दुःखी, खुश या नाराज़ होते हैं, उसका पता लग गया। मैं अभी भी भवसागर में हूं मगर भवसागर अर्थात् मन के विचार मुझे अब दुःखी नहीं करते। मैं इस विचार से इस वाणी को सच्चा मानता हूं।

भव सिंध से डूबने वाले को,
तैरा दिया सतगुरु स्वामी ने।

मैं अपने मन के चक्कर में ही दुःखी था। कभी राम को ढूंढता था, कभी कुछ करता था, कभी कुछ। कभी किसी से मित्रता करता था, कभी किसी से शत्रुता। मुझे दाता ने चिन्ता से आजाद कर दिया। वह मुझे इशारों में लिखते तथा समझाते थे, किन्तु मैं उनके संकेतों को समझता नहीं था। मेरे ही कल्याण के लिए उन्होंने मुझे यह काम दिया। वैसे मैं न गुरु हूं न महात्मा और न ही मुझे गुरु बनने की चाह है। मैं तो केवल यह समझना चाहता था यह सन्तमत या राधास्वामी मत क्या बला है, जिसने मेरे पूर्वजों की ऐसी तैसी की हुई है। वह न राम, न कृष्ण, न वेदान्त, न सूफीमत किसी को भी नहीं छोड़ता। कभी कभी मैं बहुत निराश हो कर सोचता था कि मैं कहां फंस गया। परन्तु दाता दयाल जी की मुझ पर अपार कृपा थी। उन्होंने मेरे सभी भ्रमों को दूर कर दिया।

मद मोह माया के मारे थे,
दुःख आपत्ति से दुखियारे थे।
कर दया दृष्टि छुटकारा इनसे,
दिला दिया सतगुरु स्वामी ने।

गुरु की दया दृष्टि क्या है ? संसार ने इसको नहीं समझा , मैं आपको क्या कहूं , मैं स्वयं ही नहीं समझता था । गुरु की दया दृष्टि यह है कि वह मानव की बुद्धि को निश्चयात्मक बना देता है और उसे किसी बात का पूर्ण विश्वास करा देता है ।

जब दया दृष्टि हो गई तो,
निश्चय की शक्ति मिल गई ।

जब व्यक्ति गुरु की संगत में बार - २ जा कर, उसकी बातों को सुनता, गुनता सोचता और विचारता है, तो उसका गुरु में विश्वास जम जाता है और उसे भवसागर से निकलने की इच्छा होती है । मगर संसारी लोग तो भवसागर से निकलने के लिए मेरे या और किसी सन्त के पास नहीं जाते । वे मोक्ष के लिए नहीं आते, बल्कि कोई बेटा, कोई धन, कोई बीमारी से छुटकारा पाने के लिए आता है ।

अज्ञान ने भरमाया था हमें,
और कर्म ने बहकाया था हमें ।
सत संगत के वचन से,
भरम मिटा दिया सत्गुरु स्वामी ने ।

गुरु क्या करता है ? सत्संग देकर भ्रम मिटाता है । मगर किसके ? जो भ्रम मिटाने की इच्छा से आते हैं ।

पहले नहीं गुरु गम को जाना,
जब आँख खुली तब पहचाना ।

यद्यपि मैं गुरुमत में 1905 में ही आ गया था, फिर भी मैंने गुरु गम को नहीं जाना ।

निज रूप का दर्शन अपने घट में,
करा दिया सत्गुरु स्वामी ने ।

मुझे पता नहीं कि इसमें दाता दयाल जी का क्या भाव है ? मैं तो अपना अनुभव कहने का हक रखता हूं। जब मैं आपको प्रकट होता हूं जबकि मैं कहीं जाता नहीं इससे यह सिद्ध होता है कि ये सब खेल मन के ही हैं। इससे मेरे मन के सभी खेल समाप्त हो गए। अर्थात् भू, भुर्वा: स्व:, महा: जन:, तप: सत्यं, सब समाप्त हो जाते हैं। सहस्रदल कमल, त्रिकुटि, सुन्न, महासुन्न, भँवर गुफा और सत् लोक भी समाप्त हो जाते हैं। मैं इनका साधन नहीं करता। अब मन से ऊपर चला जाता हूं। प्रकाश में रह कर उस चीज़ की तलाश करता हूं, जो प्रकाश को देखती और शब्द को सुनती है। यहीं मेरा निज रूप है। प्रकाश मेरा निज रूप नहीं है। प्रकाश तो मेरे निज रूप का एक शरीर है। शब्द उस चीज़ का गिलाफ़ है। जो शब्द को सुनती है उसका भी एक शरीर हैं। मेरा निज रूप क्या है ? मेरे अन्दर शब्द और प्रकाश के पैदा होने से एक चेतन अवस्था आ जाती है, जिसको सुरत कहते हैं। जिस जगह से सुरत पैदा होती है, वह जगह दायम और कायम है।

शब्द परगट जब धरया नाम।
शब्द गुप्त तब रहा अनाम॥

जब कोई चीज़ गति में आती है, तो शब्द होता है। जब वह परमतत्त्व गति में आता है, तो उस गति से शब्द और रौशनी का पैदा होना अनिवार्य हैं। उस गति के होने से, जो एक चेतनता हमारे अन्दर पैदा होती है और शब्द को सुनती है, वह मैं हूं। मैं कौन हूं ? प्रकृति के खेल में चेतन का एक बुलबुला। इसके अतिरिक्त मेरी और कोई हस्ती नहीं है। मैं मालिक को ढूंढने निकला था, मालिक नहीं मिला। वह क्या है ? वह 'वह' अवस्था है, जहां 'मैं' नहीं रहती।

जो मेरी 'मैं' प्रकाश को देखती और शब्द को सुनती है, जब वह प्रकाश और शब्द को छोड़ कर अपनी ओर वापिस होती है, तो मैं सब कुछ भूल जाता हूं, गुम हो जाता हूं। मेरा मस्तिष्क ही फेल हो जाता है। फिर जब मैं या कोई होश में आता है, तो सभी यही कहते हैं कि वे जिस मालिक को ढूंढने निकले थे, वह तो अकाल, अनाम, अरूप और अरंग हैं। मैं नहीं मानता। क्योंकि जब व्यक्ति स्वयं ही गुम हो गया, सब कुछ भूल गया, उसे होश ही नहीं रही उस समय तो वह कह कैसे सकता है कि मालिक अनाम, अरूप और अकाल है। मालिक क्या है ? किसी को इसका पता नही है। लेकिन एक बात ज़रूर है कि मालिक हैं ज़रूर और वह सूक्ष्म तत्व है और कुछ कहने का किसी को हक नहीं। कबीर साहिब और स्वामी जी महाराज भी यही कहते हैं, इसलिए मैं अपने आप को ग़लत नहीं समझता। राधास्वामी दयाल जी ने जेठ महीने में कहा है :--

जेठ महीना जेठा भारी,
जीवन हिरदे तपन करारी।
सन्त दयाल जीव हितकारी,
भेद कहें वह निज कर भारी।

स्वामी जी असली भेद बताते हैं। क्या बताते हैं ? बताते हैं कि हमारा जो आद है, जहां से हम आए हैं या प्रकट हुए हैं वह :

नहिं ख़ालिक मख़लूक न खिल्कत।
कर्त्ता कारण काज़ न दिक्कत॥
राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहिं कुछ नहिं, कुछ नहिं पा सो॥

अन्त में उन्होंने कहा है।

नहिं सतनाम न नाम अनामी।

तो वह क्या अवस्था हुई ? वह अवस्था यह है कि जब आदमी प्रकाश और शब्द को छोड़ कर, अपनी निज की ओर जाता है, तो वह वहाँ स्वयं ही नहीं रहता। उसकी अपनी हस्ती रहती ही नहीं, समाप्त हो जाती है। इसलिए कहा जाता है कि वह न नाम, न अनामी, न सत, न अलख और न अगम हैं। तो वह है क्या ? जिसने उसे समझ लिया, उसने समझ ही लिया और वह चुप हो जाता है। जिसने नहीं समझा, तो नहीं समझा, वह टक्करें मारता फिरता है। भले ही वह गुरुओं के दरबार में जाय कुछ प्राप्त नहीं होगा उसे। यही बात कबीर साहिब ने कही है कि मालिक यह भी नहीं, वह भी नहीं। आखिर में वह कहते हैं :-

सखिया वा घर सबसे न्यारा,
जहां पूरन पुरुष हमारा।
जहां पुरुष तहवां कछु नाहीं,
कहे कबीर हम जाना।
हमारी सैन लखे जो कोई,
पावे पद निरवाना ॥

जहां कुछ नहीं वह क्या हुआ ? प्रकृति में क्या है ? मेरे विचार में इस बात का पूरा ज्ञान न कबीर साहिब को था, न किसी और सन्त को मैंने क्या समझा मैंने केवल यही समझा कि लब खुले और बन्द हुए।

हमारे अन्तर जब तक हमारी 'मैं' है हम इस 'मैं' के चक्कर में आकर सब कुछ सच मान लेते हैं। 'मैं' से ही कभी बाप, कभी बेटा, कभी स्त्री, कभी पति, जीव, ब्रह्मा, भक्त, साधु और

सन्त बनते है। जब हम प्रकाश में जाते हैं, तब ब्रह्म बन जाते हैं और अनलहक, मैं ईश्वर हूं की आवाज लगाते हैं। जब हम शब्द में जाते हैं, तब हम अपने आपको शब्द स्वरूप समझने लग जाते हैं। असल में हम क्या हैं? मुझे तो पता नहीं लगा। मुझे तो यही पता लगा :--

खोजत खोजत खो गए,
पाया नहीं अन्त ।
वृथा निकली खोज,
खोज से कुछ नहीं बनता ॥

आखिर मैंने तो भी इतनी खोज की, मुझे क्या मिला? मुझे यह समझ में आ गया कि मैं चेतन का एक बुलबुला मात्र ही हूं और यह सारी सृष्टि किसी शक्ति के आधीन है। यह सृष्टि बनती और बिगड़ती रहती है। सारा खेल उसी शक्ति का ही है, न उसका अन्त ईसामसीह ने पाया, न सन्तों महात्माओं ने पाया। सब समय-समय पर अपनी - 2 बातें कह कर चले गए। चेत महीने में स्वामी जी ने लिखा है :--

नहीं वहाँ सतनाम,
न नाम, न अनामी।

इसका अभिप्राय क्या? इसका अभिप्राय यह है कि जब आदमी वहां पहुंच जाता है, तो अपनी हस्ती को अपने आप में गुमकर लेता है। जब वह फिर होश में आता है, तो कहता है, 'भई! वहाँ तो न नाम, न अनाम और न सतनाम है, वहां तो कुछ भी नहीं। इससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि मैं तो चेतन का एक बुलबुला ही हूं। जिस प्रकार की प्रकृति मेरे शरीर और मस्तिष्क की बनी हुई है,

वैसा ही काम करने के लिए, मैं विवश हूं। मेरे बस में कोई बात नहीं। मेरी तो क्या किसी के वश की बात नहीं। एक छोटे से बच्चे को ही देख लो। क्या वह कभी आराम से बैठता है? नहीं। वह कभी लेटा हुआ हाथ पाँव मारेगा, कभी हर समय खेलता रहेगा। क्यों? क्योंकि वह प्रकृति के वश में है। वह विवश है। जवानी में जा कर भले ही तुमलेट कर हाथ पांव न मारो, परन्तु तुम्हारा मन तो हर समय कुछ न कुछ सोचता ही रहता है। जीवन का एक क्षण भी तो ऐसा नहीं आता जब तुम्हारा मन सोचना बन्द कर दे। बुढ़ापे में सब कुछ भूल जाने को मन करता है! परन्तु ऐसा होता नहीं।

तज पिण्ड को पहुंचा ब्रह्माण्डा,
आगे बढ़ आया सच्च खण्डा।
सतधाम से सत का बिमल स्वरूप,
दिखा दिया सत्गुरु स्वामी ने॥

सतधाम का विमल स्वरूप क्या हुआ। सफेद रंग की रोशनी और शब्द। मेरी समझ में तो यह आया।

लख अलख अगम की गम पाई,
लो राधास्वामी की शरनाई॥
धुरधाम सन्त बिसराम लोक,
पहुंचा दिया सत्गुरु स्वामी ने॥

वह राधास्वामी धाम विश्राम कैसे हुआ? जब अपनी हस्ती ही अपने आप को भूल गई, तो विश्राम आ गया। जब आप रात को गहरी नींद में सो जाते हो, तो क्या आप विश्राम नहीं करते? उस समय आप संसार को भूल जाते

हो, भूल जाते हो कि नहीं। सारे दिन के किए हुए कामों को भूल जाते हो। विश्राम का अर्थ ही यही है कि जहां हम सब कुछ भूल जायें। इस गहरी नींद में हम सब भूल जाते हैं। हमारी टाँग को आपरेशन करके काट दिया जाता है, परन्तु गहरी नींद में हम भूल जाते हैं कि हमारी टांग कटी हुई है या नहीं। मैं विश्राम से ऐसा समझता हूं :--

राधास्वामी, राधास्वामी,
राधास्वामी, राधास्वामी।
राधास्वामी के नाम का मरम,
जता दिया सतगुरु स्वामी ने।

'राधास्वामी' जिसका मर्म समझा दिया, वह राधास्वामी है क्या ? वह राधास्वामी जहां से हमारी आत्मा निकली है। उसे अकल, अनामी, बेअनामी ही समझ लो। वहां गति हुई कि हमारे मन में चेतना आ गई। अपने आप को उस अवस्था में ले जाने का नाम ही राधास्वामी है। मुंह से भले ही कोई राधास्वामी, राधास्वामी न कहे, मगर अपने आपको इतना ऊंचा ले जा कर अपनी ज़ात में, अपने आप को भुला देने को अवस्था का नाम राधास्वामी धाम या अनामी पद है। यदि इसके अतिरिक्त राधास्वामी का अर्थ कुछ और है, तो राधास्वामी मत वालों से ही पूछो। मुझे पता नहीं है। यदि तुम इसका कोई और मतलब जानते हो, तो मुझे समझा दो। मैं हेरा फेरी नहीं करता सच्चाई का वर्णन करता हूं मुझे कोई निजि स्वार्थ, निजि मान और धन की ज़रूरत नहीं है।

'अपना भाग जगाओ।' भाग टुकड़े को कहते हैं। हमारे मस्तिष्क में जितने भी सैल्ज़ काम करते हैं व्यक्ति

अब अपने अन्दर साधन करता है, तो उसके सारे केन्द्र खुल जाते हैं। इसका नाम ही भाग जगाना है। परन्तु लोगों ने भाग जगाने का यह अर्थ नहीं समझा, वे भाग्य जगान का मतलब भाग्यशाली बनना समझते हैं। भाग्यशाली तो तुम तब बनोगे, पैसा तो तुम्हारे पास तभी आयेगा जब पूर्व जन्मों में आपने किसी को पैसा दिया होगा। नाम जपने से तुम्हें मन की शान्ति तो मिल सकती है, रुपया पैसा तो तुम्हें अपने प्रारब्ध कर्मों से ही मिलेगा। यह कलियुग हैं, यहां लेने देने का व्यापार है। यदि आपने किसी को दिया हुआ है, तो वह आपको ज़रूर मिलेगा। यदि दिया ही नहीं, तो मिलेगा कहां से? जो साधु लोग अपने पास धन होते हुए भी फिर भी यदि वे मांगते हैं, तो वे दोषी हैं, वे नये कर्म संचित कर रहे हैं। यदि आपके पास अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए धन नहीं है, तो किसी से ले सकते हो, मगर वह भी कुछ समय के लिए, पेट भरने के लिए भोजन के लिए तथा सर्दी से बचने के लिए कपड़ा लेने के लिए। दूसरों से धन ले कर इकट्ठा नहीं करना चाहिए। जो दूसरे दिन के लिए धन इकट्ठा करता है, वह दोषी है।

सबको राधास्वामी।

मानवता धर्म तथा युगपुरुष हजूर परम दयाल जी महाराज परमसन्त मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द जी शर्मा

परम दयाल जी महाराज, जिन्हें लोग प्यार से 'फ़कीर बाबा' या 'बाबा फ़कीर' बुलाते थे का जन्म नाम फ़कीर चन्द था। उनका जन्म 18 नवम्बर 1886 में हुआ था। वह 95 वर्ष की पक्की आयु तक इस शरीर में रहे। 12 सितम्बर 1981 में अपनी ही इच्छा से उन्होंने अपने भौतिक शरीर को, अपनी पांचवीं अमेरिकन यात्रा के दौरान में अमेरिका में ही छोड़ा और निज धाम चले गए।

परमदयाल जी महाराज इस युग के ही नहीं, अपितु सभी युगों के महान सन्तों में से एक थे। मैंने उनसे मिलने से पहले बड़े - 2 विद्वानों तथा दार्शनिकों की पुस्तकें पढ़ीं थीं, उनसे मिला ही नहीं, अपितु उनके सम्पर्क में भी रहा था। किन्तु परमदयाल जी के सम्पर्क में आने के बाद, मुझे जिस सच्चे ज्ञान का अनुभव हुआ, जिस आनन्द की प्राप्ति हुई, उसका वर्णन मैं शब्दों में नहीं कर सकता। उनके सम्पर्क

में आने के बाद ही मुझे वेदों, उपनिषदों, गीता, पुराणों और शास्त्रों में पढ़े हुए ज्ञान का मतलब साफ़ - २ समझ में आ गया। मेरे मन के सभी संशय दूर हो गए। मुझे अभय दान मिल गया। मेरे विद्या गुरु इस शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान जयपुर निवासी पण्डित मोतो लाल जी शास्त्री थे, जिनसे मैंने उनके आश्रम-मानव आश्रम जयपुर में हर वर्ष महीनों उनके पास रह कर वेदों पुराणों इत्यादि को शिक्षा ली। डा. राजेन्द्र प्रसाद हमारे प्रथम राष्ट्रपति मोतो लाल जी शास्त्री के शिष्य थे। उन्होंने राष्ट्रपति भवन में शास्त्री जो के पांच सत्संग भी करवाए थे। ऐसे प्रकाण्ड विद्वान ने 1960 में चोला छोड़ा और 1963 में मेरे विद्या गुरु की जगह मुझे परमदयाल जी महाराज जी मिले। अब ऐसा लगता है कि मेरा मानव आश्रम जयपुर में रहना, मानों मुझे मानवता मन्दिर में सथाईरूप से रहने का निमन्त्रण दे रहा था मेरी पृष्ठभूमि तैयार कर रहा था।

यह बात सत्य है कि मालिक ने ऋषियों, सन्तों और महात्माओं को आदिकाल से ही सच्चाई के फ़रमाने के लिए, समय - 2 पर इस पृथ्वी पर भेजा। हर अवतार समय के मुताबिक इस पृथ्वी पर आया। जब वेदों उपनिषदों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों को गूढ़ संस्कृत भाषा में लिखा गया था,उस समय इस अनादि धर्म को सनातन धर्म कहा जाता था। हज़ारों साल के बाद संस्कृत भाषा का लोप सा हो गया, इस लिए धर्म का गूढ़ रहस्य किताबों में ही लिखा रह गया। विद्वानों ने इस गूढ़ ज्ञान को लोगों को न बता कर गुप्त ही रखा। असलियत पर पर्दा डाल कर आप लोगों को रीति रिवाजों और देवो देवताओं की पूजा में ही उलझा

दिया और उनको बहलाने के लिए रोचक कहानियां लिखी गईं। पुराणों में ईश्वर के एक होने के इशारे तो दिए गए हैं, किन्तु उस सत्य को खोल कर, स्पष्ट करके लोगों को समझाया नहीं गया।

इस सच्चे ज्ञान को आम जनता तक पहुंचाने के लिए ही, इस युग के सन्तों के अवतार हुए। सन्त कबीर हमारे युग के आदि सन्त हैं। इसके बाद गुरु नानक देव जी, दादू दयाल जी, सन्त मीरा बाई, सन्त तुलसीदास जी आदि सन्त हुए। उन्नीसवीं शताब्दी में इस सच्चे ज्ञान को सीधी सादी भाषा में बताने वाले सन्त अवतार स्वामी जी महाराज हुए। उनके दो शिष्य राय साहिब सालिग राम जी महाराज और बाबा जयमल सिंह ने इस सत् सनातन धर्म को 'राधास्वामी' नाम देकर लाखों लोगों को इस मत में शामिल किया। हजूर सालिगराम जी महाराज के परम शिष्य दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी वर्मन ने अपने पूज्य गुरुदेव जी के आशीर्वाद से सन्तमत के सार को हजारों किताबों. लेखों तथा भजनों आदि में लिख लिख कर फैलाया। उन्होंने सन्तमत को वेदों उपनिषदों, शास्त्रों, पुराणों, वेदान्त, सांख्य आदि दर्शनों से भी पुष्ट किया। उनके लेखादि को यदि ध्यान से पढ़ा जाय, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि सत सनातन धर्म, जिसका नाम समय 2 पर बदलता रहा है, वास्तव में एक ही है और सन्तमत उसका ही एक रूप है। प्राचीन काल में यह ऋषियों और अरिहन्तों का धर्म कहलाता था, अब यह सन्तों का धर्म कहलाता है। दाता दयाल जी महाराज ने सनातनधर्म और सन्तमत के सार को निम्नलिखित दो वाक्यों में

समझाया है :-

पहला वाक्य है, "पूरी तरह से, हर चीज़ में, हर तरह से मनुष्य बनो।" दूसरा वाक्य उन्होंने अपने परम शिष्य परमदयाल पण्डित फ़कीर के लिए कहा था :-

'तेरा सगुण रूप है, सन्तमते का सार"

हजूर परम दयालजी महाराज ने अपने पूज्य गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए और अपने अन्दरूनी अनुभवों को सीधी सादी भाषा में बताते हुए, यह साबित कर दिया कि मनुष्य के अन्दर जो पूर्णता है, वह केवल उस समय निखरती है, जब वह एक सच्चा मानव बनता है। इसलिए उन्होंने 'मनुष्य बनो' का नारा दिया और अपनी संस्था का नाम 'मानवता मन्दिर' रखा। उन्होंने मुझे यह आज्ञा दी कि मैं इस सच्चे मानवता धर्म की पूरी 2 व्याख्या करूं और उसे विश्व भर में फैलाऊं। चोला छोड़ने से पहले उन्होंने मुझे कहा था, 'प्यारे मानव दयाल ! तुम परम तत्व में तभी ही मिल सकोगे, जब तुम ज्ञान और अभ्यास को मिलाकर दुनिया को यह सच्चाई खोल कर बताओगे कि सत सनातन धर्म और सन्तमत एक ही हैं और इसी को ही मानवता धर्म भी कहते हैं। मानवता धर्म या मानव धर्म कोई अलग धर्म या फिरका नहीं है। यह मानव धर्म। सत् सनातन धर्म की सही 2 व्याख्या है, जिसका मकसद लोगों को सच्चा ज्ञान देना और सच्चा मानव बनाना है।

मेरा यह यकीन है कि मेरे जन्म 2 के पुण्यों के कारण ही मुझे सत्य के अवतार और परमतत्व के सगुण रूप परमदयाल जी महाराज के पहले 1959 में मेरे अन्तर में

और फिर 1963 में साक्षात दर्शन हुए । उन्होंने अपनी अपार दया से, मुझे न ही केवल अपना सच्चा शिष्य स्वीकार किया बल्कि चोला छोड़न से पूर्व मुझ से थोड़ी सी शारीरिक सेवा लेने के लिए, बुढ़ापे में कष्ट उठा कर, मेरे पास अमेरिका में आकर महा समाधि ली। जब से उन्होंने शरीर छोड़ा है, वह मेरी रग 2 में समाए हुए हैं। मुझे ऐसा लगता है कि मैं खुद हूं ही नहीं और परमदयाल जी महाराज जी की परमसत्ता मेरे द्वारा सारा काम कर रही है।

परमदयाल जी महाराज एक सच्चे तथा स्पष्टवादी सन्त थे, जिन्होंने एक ऐसे रहस्य को खोला, जो युगों 2 तक छुपा हुआ था। अतीत के सन्तों, सदगुरुओं तथा धर्मों के संस्थापकों ने इस रहस्य को न खोल कर कि आपत्तियों के समय प्रगट होने वाले रूप का मुख्य कारण, अनुयायियों के अपने ही मन की शक्ति और विश्वास ही है, न कि गुरु की सिद्धि शक्ति, जन साधारण को हज़ारों वर्षों तक अन्धेरे में रखा।

मैं यह दावे से कह सकता हूं कि शारीरिक दृष्टि से इस छोटे से मानव को मैंने किसी अन्ध विश्वास, रुढ़िवाद अथवा कथित चमत्कारों के कारण स्वीकार नहीं, वरन् पहली दृष्टि में ही, नरदेही में उस परम पुरुष को पहचान लिया था, इसलिए ही मैंने उन्हें आध्यात्मिक परम पुरुष के रूप में स्वीकार किया।

अब मैं परम दयाल जी महाराज के पूज्य गुरु दाता दयाल जी महाराज और उनके पूज्य गुरु राय साहिब सालिग राम जी महाराज तथा उनके भी गुरु, स्वामी जी महाराज,

जो राधास्वामी मत के संस्थापक थे का संक्षिपत जीवन परिचय देते हुए राधास्वामी मत की संक्षेप में व्याख्या करूंगा ताकि आपके मन में जो भ्रान्तियां हैं, वह दूर हो जायें।

पक्षपात रहित होना और ख़ास कर धर्म के विषय में किसी भी धर्म का पक्षपात न करना ही सच्चा धर्म है। आध्यात्मिक विषयों पर हठधर्मी करना या यह कहना कि मेरा धर्म ही सबसे अच्छा है, बाकी सब बेकार हैं बहुत बड़ी मूर्खता है। इस भौतिक जगत् में आत्मा कोरी आंखों से दिखाई नहीं देती, जबकि शरीर को कोरी आँखों से देखा जा सकता है। शरीर आत्मा के प्रागट्य में सदा रुकावट डालता है इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब कोई अवतार, भक्त, वली, नबी, आध्यात्मिक गुरु या सन्त प्रगट हुआ, दुनिया उसके पीछे पड़ गई। कबीर साहिब के साथ कितना अन्याय हुआ, उनका कितना विरोध किया गया। नानक साहिब का भी कम विरोध नहीं हुआ। सन्त मीरा बाई को विषदे कर,मरवाने का प्रयास किया गया। शान्ति के दूत ईसा मसीह को सूली पर चढ़ा दिया गया। सुकरात जैसे महान दार्शनिक को विष का प्याला पिलाया गया। इसी प्रकार, सन्तमत के या राधास्वामी मत के प्रवर्त्तक परम पूज्य स्वामी जी महाराज का भी काफ़ी लोगों ने विरोध किया आज भी बहुत से अज्ञानी लोग राधास्वामी मत के नाम तक से भी घृणा करते हैं। वास्तव में, राधास्वामी मत कोई अलग फ़िरका, मज़हब या धर्म नहीं है। यह सत् सनातन धर्म का ही एक रूप है।

सन्तमत (राधास्वामी मत, जिसका एक रूप है) को क्रियात्मक रूप में कबीर साहिब ने ही प्रगट किया। समय 2

पर गुरु नानक साहिब, दादू दयाल साहिब, ग़रीबदास जी तथा अन्य सन्तों एवं महापुरुषों ने उसे चमकाया।

जैसा कि इस पृथ्वी के इतिहास में होता चला आ रहा है कि जब 2 भी अवतारों, सन्तों तथा महापुरुषों का अवतरण होता है, वे अपना-अपना उपदेश दे कर चले जाते हैं। परन्तु समय बीतने पर उनके द्वारा फैलाया ज्ञान लुप्त हो जाता है, समय के हेर फेर से, सन्त मत का ज्ञान भी एक प्रकार से लुप्त हो गया था। परम पुनीत, परमसन्त सत् पुरुष हज़ूर महाराज (श्री शिव दयाल जी महाराज ने या स्वामी जी महाराज) ने राधास्वामी मत के द्वारा सन्तमत को पुनः पनपाया। उन्होंने न ही केवल दार्शनिक तथा विद्वतापूर्ण रूप में सन्तमत के मौलिक सिद्धान्तों को सीधी सादी भाषा में लोगों को समझाया, बल्कि अधिकारी लोगों को आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले गए।

स्वामी जी महाराज (राधास्वामी दयाल या श्री शिवदयाल जी महाराज)। अगस्त 1818 में आमरा शहर के मोहल्ला पन्नी गली में प्रगट हुए। उनका कोई गुरु नहीं था और न ही उन्होंने किसी से परमार्थ का उपदेश लिया था। उन्होंने छः साल की कच्ची आयु में ही ख़ास-2 लोगों से परमार्थ का समझना शुरू किया। पन्द्रह वर्ष की आयु में उन्होंने अपने ही मकान के एक कमरे में बैठकर सुरत-शब्द योग का अभ्यास आरम्भ कर दिया और शीघ्र ही अपने घर पर ही सन्तमत पर सत्संग देना शुरू कर दिया। उनका सत्संग का यह सिलसिला लगातार सत्रह वर्ष तक चलता रहा। इस अवधि में लगभग तीन हज़ार स्त्री-पुरुषों ने उनके सत्संग से लाभ उठाया। इन सत्संगियों

में अधिकतर हिन्दू, थोड़े से जैन, थोड़े से मुसलमान और इने गिने ईसाई भी थे। अधिकतर सत्संगी गृहस्थी थे, थोड़े से साधू भी थे। किन्तु अन्त में राधास्वामी दयाल ने साधुओं के भेष को विशेषता बिलकुल ही नहीं रखी। जिन्होंने गृहस्थ जीवन त्याग दिया था, उनको भी गृहस्थी गुरु अपनाने को कहा।

राधास्वामी मत में गृहस्थी और साधू एक समान हैं। राधास्वामी मत के अनुयायी साधुओं का मान तो करते हैं, परन्तु इस बात को महत्व नहीं देते कि परमार्थ की कमाई के लिए केवल साधू ही अधिकारी है। इस मत में अभ्यास करने वालों की कई श्रेणियाँ हैं। जो शुरु - 2 में गुरु धारण करके, सत्संगों को सुनना शुरू करते हैं, उन्हें सत्संग कहा जाता है। जो सहस्र दल कमल का अभ्यास करने के बाद, त्रिकुटी स्थान के साधन में लग जाते हैं, वह साधू कहलाते हैं। जो सुन्न और महासुन्न का अभ्यास करते हैं और विवेक के साथ समाधि लगाते हैं, वे हंस कहलाते हैं। सत्तलोक तक पहुंचे हुओं को सन्त कहा जाता है और जो सत्तलोक से भी परे पहुंचते हैं उन्हें परमसन्त कहा जाता है।

राधास्वामी मत या सन्तमत के आम सत्संगों को जारी रखने में रायसाहिब सालिगराम जी महाराज ने बहुत ही सहयोग दिया। जब उन्होंने राधास्वामी दयाल स्वामी जी महाराज को अपना गुरु धारण कर लिया, तो उनके मन में एकाग्रता आ गई और उन्हें शान्ति मिल गई। कृपालु राय साहिब ने सोचा कि उनको इस अमूल्य सम्पत्ति को दूसरों को भी बांटनी चाहिए,

इसलिए उन्होंने सत्संग देना शुरू कर दिया।

सन् 1857 के गदर की भयंकर घटनाओं ने लोगों के दिलों को हिला दिया। सत्त पुरुष हजूर महाराज (रायसाहिब सालिग राम जी महाराज) के हृदय पर भी इस क्रान्ति ने गहरा प्रभाव डाला। वह निराश रहने लगे। हर समय, एक ही प्रश्न उनके सामने रहता था क्या लोगों को कहीं भी शान्ति मिल सकती है? वह जगह-2 पर साधू सन्तों के पास इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए गए, परन्तु उनकी गुत्थी को कोई भी न सुलझा सका। तब उन्होंने स्वयं वेदों तथा उपनिषदों का गहन अध्ययन किया, परन्तु उनकी समस्या हल नहीं हो सकी। फिर उन्होंने मज़हबी छान बीन शुरू की उससे ज्ञान में तो काफी वृद्धि हुई, परन्तु फिर भी उन्हें अपने प्रश्न का ठीक-2 उत्तर नहीं मिला। अन्त में वह राधास्वामी दयाल श्री शिवदयाल जी महाराज से मिले। उनके सत्संग सुने, उनसे वार्तालाप किया और तब उनको गुप्त भेदों की समझ बूझ और ज्ञान का सार समझ में आ गया।

राधास्वामी मत में ज्ञान के साथ-2 अभ्यास को भी बहुत महत्त्व दिया गया है। जब कोई व्यक्ति किसी हद तक वाचकज्ञान तो प्राप्त कर लेता है, मगर अन्दरूनी अभ्यास पूरा नहीं कर पाता, तो उसे अपने ज्ञान का अभिमान हो जाता है। अन्य बहुत से मत या पन्थ, अभ्यास को ज्ञान के आधीन न मान कर, अभ्यास के महत्व को कम कर देते हैं। परन्तु राधास्वामी मत अभ्यास को बहुत ही अधिक महत्व देता है। पुस्तकों से ज्ञान तो अवश्य ही हो

जाता है, मगर वह ज्ञान या जानकारी, उस समय तक लाभदायक नहीं होती, जब तक कि साधन या अभ्यास से उस ज्ञान या जानकारी पर पूरा - पूरा अधिकार प्राप्त न कर लिया जाय। स्वामी जी महाराज ने ठीक ही कहा है :--

यह करनी का भेद है,
नहि बुद्धि विचार ।
कथनी तज करनी करे,
तब पावे कुछ सार ॥

साधन या अभ्यास की विधि राधास्वामी मत या सन्तमत की ही देन नहीं है, अपितु वह बहुत प्राचीनकाल से ही प्रचलित थी। यह एक तरह का प्राकृतिक, स्वाभाविक और सहज साधन है, जो मनुष्य को उसके चित्त को एकाग्र तथा निर्मल करने में सहायता देता है। राधास्वामी मत की यह विशेषता है कि उसने आध्यात्मिक साधन अभ्यास को, जो कि पहले गुप्त और पेचीदा था, सहज और सरल बनाकर सर्व सुलभ कर दिया ।

सच्चा सुख हमको कहां से मिलता है ? इस समस्या पर बहुत कम लोग ही विचार करते हैं। सच्चा सुख भौतिक वस्तुओं के संग्रहमात्र से ही नहीं मिलता, बल्कि वह मनुष्य के अन्तर में ही वास करता है, जो किसी अनुभवी सद्गुरु के निर्देशन में अभ्यास करने से ही प्राप्त होता है। योग का उद्देश्य मनुष्य को अन्तरमुखी बनाना है। जो व्यक्ति जितना भी अन्तरमुखी होगा, उसे उतनी ही शान्ति सुख तथा आनन्द की अनुभूति होगी। यदि किसी

व्यक्ति ने अन्तरमुखी होने का पूरा अभ्यास कर लिया है, तो वह सुषुप्ति के प्रभाव को जागृत और स्वप्न की अवस्थाओं में भी पैदा कर सकता है और इस दुनिया में रहते हुए भी उसे बेचैनी, घबराहट और अशान्ति का डर नहीं रहता। चंचल या बहिर्मुखी को कभी भी स्थायी सुख या शान्ति नहीं मिल सकती। वह हमेशा परेशान ही रहता है। दुनियावी मजहबों के बाहरी कर्मकाण्ड तीर्थ, व्रत, रोज़ा आदि सभी बहिर्मुखी कर्म हैं।

राधास्वामी मत में तीन बातों को बहुत ही आवश्यक माना जाता है। पहली बात है अनुभव सम्पन्न सद्गुरु का मिलना, दूसरी बात है सत्नाम और तीसरा है सत्संग। यह तीनों राधास्वामी मत के स्तम्भ हैं। गुरु वही है, जो स्वयं अनुभव सम्पन्न है,जो अन्धकार में प्रकाश प्रस्फुटित करा दे। ऐसे निःस्वार्थी पूर्ण पुरुष को सद्गुरु कहते हैं। सद्गुरु का सम्पर्क, दर्शन आदि करना बहुत ही आवश्यक है।

सच्चा ज्ञान मनुष्य को तभी प्राप्त होता है, जब सद्गुरु अपनी मेहर से सच्चा नाम (सत्नाम) देता है। सत्नाम वह होता है जो सद्गुरु व्यक्ति विशेष की प्रकृति एवं आवश्यकता के अनुसार ही देता है। दाता दयाल जी महाराज का कहना है कि गुरु द्वारा जो नाम दिया जाता है, उसमें गुरु की कमाई भी शामिल होती है। इसलिए नाम में विशेष रासायनिक प्रभाव होता है, जिससे एक खास प्रकार की आध्यात्मिक बरकत होती है।

सत्नाम के बाद सत्संग की महिमा आती है। वास्तव में, सत्संग सद्गुरु की संगत को ही कहते हैं। सद्गुरु के

अनमोल वचन शिष्य पर अपना पूरा प्रभाव डालते हैं। आध्यात्मिक सफलता को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु के बाहरी सत्संग का बड़ा ही महत्व है। आन्तरिक सत्संग तो शिष्य को अपने अन्तर में प्राप्त होता ही रहता है। राधास्वामी मत की असली पुस्तक, मनुष्य का अपना ही 'आपा' है और सत्संग से उसी के अध्ययन में रुचि हो जाती है।

रायसाहिब सालिगराम जी महाराज के परमप्रिय शिष्य दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी वरमन, जो राधास्वामी मत के व्यास माने जाते हैं का जन्म 2 फ़रवरी 1860 में मौज़ा पुराकानूनगोआईन ज़िला वाराणसी में एक सम्पन्न कायस्थ परिवार में शिवरात्रि के दिन हुआ था। उनका परिवार हर प्रकार से सम्मानित था। उनके दादा बनारस के महाराजा के सरकारी वकील थे और इनके पिता एक सम्पन्न तथा सम्मानित ज़मीदार थे। शिवब्रत लाल जी ने चुनार के हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की। उसके बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने एम. ए. की डिग्री प्राप्त की।

महर्षि जी का विवाह श्रीमती यशोदा कुँवर से हुआ था, जो अपनी उदारता, विचारों की दृढ़ता, सज्जनता एवं शुद्धता के लिए विख्यात थीं। वह युगपुरुष महर्षि शिवब्रत लाल जी वर्मन की धर्मपत्नी बनने के लिए सर्वथा उपयुक्त थीं। महर्षि जी के तीन पुत्रियां और एक पुत्र हुआ। पुत्र का स्वर्गवास तो बचपन में ही हो गया, पुत्रियां समय आने पर संभ्रांत परिवारों में ब्याही गईं।

एम. ए. पास करने के बाद महर्षि जी रीवां रियासत में

तल्लुकेदार बने। उनके मिजाज़ में फ़कीरी थी। ताल्लुकेदारी के ओहदे की ठाठ बाट उन्हें रास नहीं आई। इसलिए उन्होंने इस ओहदे को तिलांजलि दे दी। फिर व्यापार करना शुरू कर दिया। साधू प्रकृति होने के कारण वह व्यापार में भी अधिक दिन तक टिक नहीं सके। बाद में वह मिशन हाई स्कूल में हैडमास्टर हो गए। बनारस चुनार, बरेली आदि स्कूलों में उन्हें पढ़ाने का अवसर मिला।

सन् 1888 ने महर्षि जी राधास्वामी मत के प्रवर्त्तक हज़ूर रायसाहिब सालिग़ राम जी महाराज [जो यू. पी. के पोस्टमास्टर जनरल भी रह चुके थे) के दरबार में हाज़िर हुए तथा उनसे राधास्वामी मत की दीक्षा ली। पहले पहल जब महर्षि जी रायसाहिब सालिग राम जी महाराज के हज़ूर में शामिल हुए, तो सत्संगियों के जहां जूते पड़े हुए थे, वहाँ जा कर बैठे। राय साहिब सालिगराम जी की नज़र जब उन पर पड़ी तो उन्होंने महर्षि जी को बड़े प्यार से अपने पास बुलाकर बिठाया और वहाँ पर बैठे हुए लोगों को कहा, "यह अपने वक्त का बड़ा क्लास्की राइटर होगा। यह अपनी कलम के द्वारा सन्तमत की गूढ़ तालीम को आसान बना कर दूर 2 तक फैलायेगा।" कालान्तर में, महर्षि जी महाराज के पूज्य गुरुदेव की वह भविष्यवाणी सर्वथा सच साबित हुई।

सन् 1904 में महर्षि जी की पत्नी परलोक सिधार गईं। इससे महर्षि जी को ज़बरदस्त धक्का लगा। वह पूर्णतया वैरागी हो गए। शान्ति की तलाश में वह इधर उधर भटकने लगे। इस हालत में आप हरिद्वार पहुंचे। वहां अकस्मात उनकी मुलाकात महात्मा हन्सराज तथा लाला लाजपत राय जी से हो गई, जो महर्षि जी की योग्यता तथा

प्रतिभा से पहले से ही परिचित थे। दोनों महापुरुषों ने महर्षि जी से "आर्य गज़ट" के सम्पादन का कार्य सम्भालने का आग्रह किया। महर्षि जी ने उनके आग्रह पर लाहौर में आर्य गज़ट का सम्पादन का कार्य सम्भाल लिया।

1918 में महर्षि जी हैदराबाद (दक्कन) पधारे और पूरे हैदराबाद में कई ज़िलों में सत्संग केन्द्र स्थापित किए। 1918 से 1938 तक लगातार वह इन केन्द्रों में सत्संग देते रहे। 1921 में आपने लाहौर छोड़ दिया और अपनी कमाई से अपने पुश्तैनी गाँव पूराकानूनगोआईन (गोपीगंज वाराणसी) में कुछ ज़मीन खरीद कर, राधास्वामी धाम की स्थापना की और वहां रह कर दिन-रात लोगों को सत्संग देते रहे। इस प्रकार, महर्षि जी ने वाराणसी (यू. पी.) लाहौर (पंजाब, पाकिस्तान) तथा हैदराबाद दक्कन के बीचों बीच एक आध्यात्मिक त्रिकोण की स्थापना की और वहां रहकर व्यक्तिगत सम्पर्क से लाखों घरों में अपनी अलौकिक ज्योति से उजाला कर दिया। आप ज़बरदस्ती किसी को भी अपने मत में शामिल करने के विरुद्ध थे।

महर्षि जी ने 1911 में ही विदेशों का दौरा किया था। वह चीन, जापान तथा अमेरिका गए। सन्तमत की शिक्षा को विदेशों में भी फैलाया। आपकी योग्यता तथा विद्वता से प्रभावित होकर, शिकागो विश्वविद्यालय ने आपको 'डाक्टर आफ़ला' (एल. एन. डी.) की उपाधि से विभूषित किया।

महर्षि जी ने लगभग पांच हज़ार अमूल्य पुस्तकें लिखीं,

जिनमें नानक योग, कबीर योग, राधास्वामी योग, सुरत-शब्द योग, महारामायण, विज्ञान-कृष्णायन, विज्ञान बोधाइन सूफ़ीइज़म भगवद्गीता, लाईट आन आनन्द योग तथा जैन साहित्य की पुस्तकें मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने बीसियों उपन्यास लिखे, जिनमें से 'शाही लकड़हारा, 'माया मच्छन्दर' आबदार "मौती" ताबदार मोती" इत्यादि उलेख-नीय हैं। लेख भी उन्होंने हज़ारों की संख्या में लिखे और कई मासिक पत्रों का सम्पादन किया। ऐसे महान युग पुरुष के शिष्य थे परमसन्त, परमदयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज, जिनके सम्बन्ध में उस युगपुरुष ने कहा था :-

इसलिए सबसे ज्यादा मुझको तुम पर नाज़ है।
नाम रौशन तू कहेगा यह दिली आवाज़ है।

वास्तव में ही महर्षि जी की इस भविष्यवाणी को, परमदयाल जी महाराज ने बड़ी सच्चाई, सफाई तथा लग्न से पूरा किया और मानवधर्म को देश विदेश में फैलाया।

परम सन्त परम दयाल पण्डित फ़कीर चन्द जी महाराज का सत्संग

दिनांक 21-9-1980

(गतांक से आगे)

मैं जानता हूं कि मेरी साफ बयानी से मन्दिर को मैं कुलहाड़ी मारता हूं। मगर, बाबा मन्दिर बन गया, लाख दो लाख रुपया यहां आ गया, तो यह मेरे साथ जाएगा? मेरे साथ मेरा अमल (कर्म) जाएगा। अगर मैं पब्लिक को सच्ची बात नहीं बताता, पर्दे में रख के अपने पीछे लगाता हूं [तो] मैं मुजरिम हूं। ये जितने महात्मा गुज़रे हैं(उन्होंने) इस बात का पर्दा रखा। लोगों को अपने पीछे लगा कर, उनकी जायदादों से अपने बच्चों के पेट पाले, अपने आश्रम बनाए। इनका क्या अंजाम होगा, यह भगवान जानता है। अगर युधिष्ठिर के सिर्फ़ एक झूठ बोलने से--"अश्वत्थामा हतो-नरो कुञ्जरो वा" भगवान के असूल [क़ानून] के कारण उसको भी अढ़ाई घड़ी का नरक मिल सकता है तो मेरे जैसे महात्मा जो यह कहते हैं--'हां हम तुम्हारे अन्दर गए थे, हमने तुमको पुत्र दे दिया' ये कितने नरक में जायेंगे? मेरी समझ में यह नहीं आता। इस

वास्ते (अत:) मैं आया ही इसी वास्ते हूं (अर्थात ऐसे झूठ और सत्य को उजागर करने के लिए आया हूं) कृष्ण कहते हैं 'जब धर्म को हानि होती है, मैं आया करता हूं।' और जब अज्ञान अन्धेरा छा जाता है, उस वक्त कोई न कोई ताक़त आ कर अज्ञान अन्धेरे को मिटाने की कोशिश करती है। इन वक्त जितना भी गुरुमत फैला हुआ है ये जितने मता मतान्तर हैं, ये सब काल और माया के अन्दर हैं। 'काल ने जब भ्रमाया, मैं कैसे कहूं बखान ?'' स्वामी जी ने कहा। तो काल हमारा मन है। इस मन ने सभी को भ्रमाया हुआ है सभी जगह। यह ठीक है मैं जहां बोलता हूं आम आदमियों के विश्वास टूटते हैं। अरे ये विश्वास तो आज भी टूटेंगे और कल भी टूटेंगे। तुम्हारे (टूटने वाले) विश्वास को देखूं या अपने (अटूट) विश्वास को देखूं। मुझे पहले अपनी जान (आत्मिक शुद्ध अवस्था) प्यारी है तुम (अपने टूटने वाले विश्वासों से बन्धे) प्यारे नहीं हो। तुम्हारे विश्वास टूटने को देखूं (देखकर क्या करूं ?) तुम्हारा विश्वास टूटता है (तो) मत आया करो मेरे सत्संग में। मैं (क्या) तुम्हें बुलाने जाता हूं कि ज़रूर आओ मेरे सत्संग में ? तुम्हारा जो करे आओ, जो करे न आओ। तुम्हारा जो करता है मेरी किताब पढ़ो, तुम्हारा जी करता है मेरी किताब को न पढ़ो। मैं इसका ठेकेदार तो नहीं हूं। तो मैं अपनी ज़मीर (अन्तरात्मा) को कुचलना नहीं चाहता। मुझे ख़ुद पता नहीं मेरा अञ्जाम क्या होगा। मैंने क्या लेना है ? इन महात्माओं के हाल मैंने देखे। मेरी रूह कांप गई है। राधास्वामी दयाल दो

साल सख्त बीमार रहे। बाबा सावन सिंह का क्या हाल हुआ? स्वामी रामकृष्ण परमहंस का क्या हाल हुआ? जोज़ुस क्राईस्ट का क्या हाल हुआ? राधास्वामी के ब्रह्म शंकर दत्त कैंसर से मरे। सरदार साहब टी.बी. से मरे। बड़े - 2 सन्तों महात्माओं का क्या हाल हुआ, मैं कांपता हूं। अगर भई, नाम जपने वाला, शब्दयोग का अधिकारी भी अपनो बीमारी को दूर नहीं कर सकता तो तुम्हारा क्या होगा? बताओ मुझे। तुम गुरुओं के पास जाते हो 'हमारी यह बीमारी ठीक हो जाए, वे गुरु जो शब्द अभ्यासी हैं आप खुद बीमार हैं तुम्हारा इलाज क्या करेंगे?

बात मैं बड़ी साफ कहता हूं। लगाव लपेट की कोई बात नहीं। सो इस वास्ते मैंने तालीम को बदला है--दाता ने कहा था 'चोला छोड़ने से पहले तालीम को बदल जाना।' मैं [ने] हज़ूर बाबा सावन सिंह ज़ातेपाक से कहा कि यह मेरे ज़िम्मे ड्यूटी है, आप हुक्म देदें, मैं नहीं करना चाहता। उन्होंने कहा--'नहीं, गुरु की आज्ञा का पालन करो, मैं तुम्हारा पुश्त व पनाह [पीठ का सहारा और रक्षक] रहूंगा। निर्भय हो कर काम करो।' और जो कुछ मैं कहता हूं, बाबा चरन सिंह, सन्त कृपाल सिंह, नन्दू सिंह,आनन्द राव और सन्त महात्मा मानते हैं कि मैं जो कुछ कहता हूं ठीक है। मगर पब्लिक के इल्ज़ाम पर यह [ऐसा] नहीं कहते। क्योंकि अगर ये [ऐसा] कह दें तो जो इनका दायरा बना हुआ है, यह टूट जाता है, पैसा नहीं आता। लोग अज्ञान से देते हैं अज्ञानी का खाया पैसा तो इन्सान को खा जाता है। मैंने दाता दयाल के रिश्तेदार देखे।

पैसा आता था, (वे) खाते थे। उनका जो हाल हुआ मैं जानता हूं। 'इल गाट, इल स्पेंट' (बुरा पाया, बुरी तरह ख़र्चा गया) जो धोखे से, प देंसे हमने रुपया कमाया है, वह हमारी जान खाएगा। हम जाते कहाँ है? हमारी औलाद पर जाएगा। तो दुनिया में जीने का राज़ मैंने बता दिया कि सन्तान को सन्तान के ख़याल से पैदा करो। मातायें नेशन(क़ौम)को बनाने वाली हैं। उनको अच्छा संस्कार दिया जाए। दुनिया में रहने के लिए तुम्हारा अगर कोई मददगार है तो तुम्हारा मन मददगार है। हमेशा अच्छा खयाल रखो। 'जैसी आसा वैसी बासा। जैसी करनी वैसी भरनी'। दुनिया को तो परमार्थ की ज़रूरत नहीं है। दुनिया तो दुनियाँ में सुख चाहती है। तो मैंने दुनिया के सुख के लिए आप को बात बता दी, "कर्म तू जो जो करेगा, अंत में भोगना पड़ना।" जो हम कार्य करते हैं, इन से बच कर जायेंगे कहां? तो मैंने यह तालीम, राज़ इसलिए खोला है कि एक तो हम भोले भाले लोगों को, जो उठता है दो किताबें हाथ में लेकर क़ाबू करके लैक्चर देना शुरू कर देता है। ऊट पटांग सी बातें कह कह के, कह कह के, कह कह के उनमें भरता है। एक दफ़ा मुझे याद है, एक त्रिलोक चन्द था इन्जीनियर और एक प्रोफैसर था। वे मेरे पास आए। बड़ी देर की बात है। तो उन्होंने कहा, "करामात। बाबा सावन सिंह एक दफ़ा गड़वा मांज रहे थे। उन्होंने रगड़ दिया। उनका काम बन गया। उन्होंने यह किया, उन्होंने वोह किया।" मैंने बाबा सावन सिंह जी को चिट्ठी लिखी। मैंने कहा (लिखा), "महाराज, आप के दो चेले आए हैं। वह यह कहते हैं। क्या यह ठीक (सच) कहते हैं? मैं तो मानता नहीं।" उन्होंने मुझे

लिखा, "वे बेवकूफ हैं। यह बात नहीं है। यह हम अपने वहमों, भ्रमों में आकर के बात को कुछ का कुछ समझ लेते हैं। तुम को मुझ को जो कुछ मिलना है, अपने कर्म का फल मिलना है। गुरु ने तुमको ज्ञान देना है-- तुम्हारा खयाल बदलना है। अगर तुम खयाल अपना बदल जाओ तो तुम्हारा काम बन सकता है। इस वास्ते हमेशा आशा-वादी रहो। पूरा विश्वास रखो। गुरु फ़कीर चन्द का नाम नहीं है। कबीर साहब ने तो साफ़ लिख दिया, "गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिए अन्ध। दुःखी होएं संसार में, आगे जम का फंद।" अब देखो। जो यह कहता है, मेरा गुरु सावन सिंह या बाबा फ़कीर चन्द है, तो कबीर साहब के कहने के मुताबिक, वह तो दुःखी होगा ही, गुरु नाम है ज्ञान का, गुरु नाम है समझ का, गुरु नाम है विवेक का सत्संग में जा कर क्या मिलता है? पढ़ो इसी कड़ी को :--

"चल सतगुरु की हाट ज्ञानबुद्धि लाइये, कीजे साहब सों हेत परम पद पाइये।" कबीर साहब कह गए हैं।

[क्रमशः]

नारायणदास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फ़कीरधाम, सरड डोमरो, बरास्ता रक्कड़, जिला कांगड़ा,
हिमाचलप्रदेश

परमसन्त सद्गुरु
हजूर मानव दयाल जी महाराज

डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश, परम प्रिय सत्संगियो,

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई ।

मैंने पिछले मासिक सन्देश में 17 मई 1993 तक की दौरे की सूचना दी थी। मैंने आपको बताया था कि दिल्ली के हवाई अड्डे से मुझे गल्फ एयर लाइन्स की उड़ान पर रात के 9 बजे अमेरिका के लिए रवाना होना था। हालांकि मैंने जानबूझ कर इस प्रोग्राम की सूचना सब को नहीं दी थी, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि लोग एक औपचारिक दृष्टि से विदाई देने के लिए कष्ट उठायें। फिर भी इस बार आचार्य श्री के. पी. वर्मा तथा उनकी पत्नी, श्री हरविंदर सिंह तथा उनकी पत्नी मनजीत, श्री पवन शर्मा तथा उनकी पत्नी अर्चना, होशियारपुर से आचार्य शब्दानन्द, कु. साधना

सक्सैना, बुलन्दशहर से श्रीमती आदर्श हमारी ही कारों में आचार्य वर्मा जी के घर से हवाई अड्डे पर आए। इनके इलावा श्री अजय भटनागर और इण्डियन एयर लाइन्स के ग्राउण्ड इन्जीनियर श्री नमित स्वयं ही इस अवसर पर प्रेम से प्रेरित होकर हवाई अड्डे पर पहुंचे। इन सब लोगों ने अपनी श्रद्धा के अनुसार विदाई दी और साढ़े छः बजे सायं ही वापस चले गए।

हमारी उड़ान ठीक समय पर रवाना होकर दूसरे दिन प्रातःकाल लंदन पहुंच गयी। कुछ घंटे लंदन के हवाई अड्डे पर ठहरने के पश्चात् 9 बजे अमेरिकन एयर लाइन्स की उड़ान के द्वारा न्यूयार्क से रवाना होकर मैं उसी दिन करीब 11 बजे तक न्यूयार्क पहुंच गया। वहां पर श्री बलविन्दर सिंह था उनके भाई श्री सुनील मुझे अपने घर ले जाने के लिए हवाई अड्डे पर मौजूद थे। वास्तव में आचार्या थैल्मा को न्यूयार्क हवाई अड्डे पर आना था। चूंकि उन्हें न्यूयार्क पहुंचने में देर लगनी थी, इसलिए उन्होंने ही श्री बलविन्दर को टैलीफोन द्वारा सूचना देकर न्यूयार्क हवाई अड्डे पर भेज दिया था। मैं करीब 11 बजे प्रातःकाल न्यूयार्क हवाई अड्डे के उस टर्मिनल पर पहुंचा, जो अमेरिकन एयर लाइन्स का अपना ही टर्मिनल है। किन्तु हवाई जहाज़ से निकल कर पासपोर्ट की जांच पड़ताल और कस्टम की जांच तक पहुंचने के लिए एक मील से भी अधिक चलना पड़ता है। मुझे 65 वर्ष की आयु से ऊपर विशेष नागरिक की हैसियत से बिजली की कुर्सी के द्वारा ले जाकर केवल 25 मिन्ट में

हो उस स्थान पर पहुंचा दिया गया, जहां श्री बलविन्दर और उनके छोटे भाई बिट्टु मेरे स्वागत के लिए मौजूद थे। इस 2 घण्टे के अन्दर श्री बलविन्दर के नये निवासस्थान मोरिस टाऊन न्यूजर्सी में पहुंच गए।

पिछले वर्ष ही मैंने श्री बलविंदर के इस नए विशाल भवन के निर्माण के दौरान में उद्घाटन की पूजा कराई थी। यह विशाल 3 मंज़िला भवन बहुत बड़ा और हर प्रकार की आधुनिक सुविधाओं से मुक्त है। मैं सारा दिन अधिकतर इसी स्थान पर रहा और मौरिसटाऊन के सत्संगी मिलने के लिए आते रहे। 18 मई प्रातःकाल न्यूयार्क, न्यूजर्सी के हवाई अड्डे से मैं 8 बजे रवाना हो कर 9 बजे प्रातःकाल वाशिंगटन नेशनल हवाई अड्डे पर पहुंच गया और रात्रि को गेटर्ज़ बर्ग में श्रीमती आचार्या थैल्मा कार्टर के निवासस्थान पर विश्राम करने के बाद 19 मई को 11 बजे प्रातःकाल वाशिंगटन नैशनल से डैल्टा ऐयर लाइन के द्वारा 11 बजे रवाना होकर करीब 1 बजे अपने ज्येष्ठ पुत्र अरुण और बहू मंजू के घर क्लीवलैंड में 3 दिन का विश्राम करने के लिए क्लोवलैंड हवाई अड्डे पर पहुंच गया। यहां मैं आपको यह याद दिलाना चाहता हूं कि आचार्या थैल्मा कार्टर ने परमदयाल जो महाराज के चोला छोड़ने के बाद तीन बार उनका शारीरिक रूप में दर्शन किया और बार्तालाप किया। इस सन्दर्भ में मैं आपको वताना चाहता हूं कि 30 और 31 मार्च को रात्रि को एवं 31 प्रातःकाल थैल्मा कार्टर के सामने भाग्य माता जी शारीरिक रूप में प्रगट हुई और उन्होंने थैल्मा को मेरे लिए विशेष सन्देश दिया। थैल्मा कार्टर ने उसी समय मुझे होशियारपुर में

टैलीफोन किया और बताया कि भाग्य माता जी ने मेरे लिए एक विशेष संदेश दिया है, जो वह मुझे गेटर्सबर्ग पर पहुंचने पर देंगी। उसने यह भी कहा कि भाग्य माता जी सभी सत्संगियों के लिए सन्देश भेज रहा हैं। कि वह बिल्कुल ठीक हैं और उन्होंने मानवधर्म की रक्षा के लिए और मानवदयाल जी महाराज को विश्व भर में विशेष मार्गदर्शक बनकर मानवता के मार्ग पर चलाने के लिए उनके व्यक्तित्व को मजवूत बनाना चाहिए और किसी के मन में बदले की भावना नहीं होनी चाहिए।

मैं यह सब वार्ता केवल इसीलिए लिख रहा हूं कि परमदयाल जी महाराज का अवतारत्व जगत् कल्याण के लिए था। उन्होंने जिस सच्चाई से अध्यात्मिक मार्ग दर्शन किया है उसकी मिसाल भारत के अध्यात्मिक इतिहास में नहीं मिलती। परमदयाल जी के इष्ट और गुरु महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज ने अनेक स्थानों पर इसी सच्चाई का वर्णन किया है। एसी घटनाओं से सभी का विश्वास दृढ़ हो जाता है और हमें मानवता धर्म एवं सतसनातन धर्म के नियमों पर चलने का आधार मिल जाता है। मैं 21 मई को वाशिंगटन डी. सी. होता हुआ अमेरिकन एयर लाइन्स की उड़ान से रात्रि को पौने बारह बजे ट्रिनीडाड के अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पोर्ट आफ स्पेन पर पहुंच गया। कस्टम दफ्तर से मेरे निकलते ही श्री विश्वामित्र मराज, डा. हरि, श्री गुरबल सिंह, श्री अवतार सिंह मल्ली, श्रीमती बारबरा ब्रूस और उनके सुपुत्र योगेश और कुछ अन्य व्यक्ति मौजूद थे। यह सभी प्रेमभाव से मिलने के बाद दूसरे दिन के कार्यक्रम की प्रतीक्षा के लिए अपने २ घरों को रवाना हो

गए। मैं श्री विश्वामित्र महाराज और डा. हरि विश्वामित्र जी की कार से रवाना होकर करीब एक घंटे में विश्वामित्र महाराज के निवासस्थान पर पहुंच गए। श्रीमती शान्ति महाराज हमारी प्रतीक्षा में जाग रहीं थीं। इस बार महाराज परिवार ने मेरे 6 दिन के निवास के दौरान अद्वितीय सेवा की।

दूसरे दिन सायंकाल सैंटाक्रूज़ में श्रीमती बारबरा ब्रूस के घर पर एक विशाल सत्संग आयोजित था श्री गुरुबल सिंह प्रातःकाल साढ़े 10 बजे मुझे श्री विश्वामित्र महाराज के ज्यूलरीस्टोर पर लेने के लिए आ गए। श्री महाराज ने अपने स्टोर का नाम 'महाराज ज्यूलरी स्टोर' से बदल कर "ॐ ज्यूलरी स्टोर' रख दिया है। यह बात उनके वैराग्य की अवस्था को अभिव्यक्त करती है। अब इस स्टोर के मालिक उनके तीनों बच्चे और उनकी पत्नी श्रीमती शान्ति महाराज हैं और श्री विश्वामित्र वेतन लेकर स्टोर का प्रबन्ध करते हैं। उनके स्टोर की विशेषता यह है कि उसमें सभी आम करने वाले स्त्री और पुरुष सच्चाई और प्रेम से अपना काम करते हैं। हर वर्ष मैं 2-3 घंटे स्टोर में जाया करता हूं और इस दौरान में सभी कार्यकर्ता मुझे व्यक्तिगत रूप से मिलते हैं, आशीर्वाद-मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं।

श्री गुरुबल सिंह पहले मुझे अपने घर ले गए, जहां उनकी पत्नी श्रीमती कमलजीत के द्वारा बनाए हुए अत्यन्त रुचिकर शाकाहारी दोपहर के भोजन के बाद मैंने कुछ घंटे उनके निवासस्थान पर विश्राम किया। सत्संग के समय से एक घंटा पूर्वक गुरु के घर से रवाना होकर हम आधे घंटे के लिए अपने परमप्रिय इसाई शिष्य इलोस के घर पर रुके। इस दौरान में श्री एलोस ने बिजली की विशेष मशीन के

द्वारा मेरी पीठ का इलाज किया और उससे मुझे बहुत आराम मिला। श्रीमती बारबरा ब्रूस के निवासस्थान पर करीब 60 व्यक्ति प्रतीक्षा कर रहे थे। नहीं मालूम श्रीमती बारबरा ब्रूस तथा उनके सुपुत्र योगेश ने भारतीय परम्परा के अनुसार सद्गुरु का स्वागत करने की विधि कहां से सीखी है। हरएक सत्संगी ने 'जयगुरु-जयगुरु' गान करते हुए फूलों से स्वागत किया और हरएक व्यक्ति ने अलग-अलग आरती उतारी। इसमें करीब एक घंटा लग गया। मैं ने उन्हें बताया कि इस प्रकार का स्वागत करना और आरती करना केवल उनका अपना ही स्वागत और अपनी ही आरती है। हरएक व्यक्ति अपने आप में पूर्ण है। सद्गुरु का यह कर्त्तव्य है कि वह सत्संगियों की गुप्त पूर्णता को प्रगट कर दे। मैंने इसी पूर्णता को आधार बनाकर सत्संग दिया। मैंने उन्हें बताया कि प्रत्येक धर्म, विशेष कर सनातन धर्म, यहूदी धर्म, इसाई धर्म, इस्लाम धर्म, सिक्ख धर्म, जैनधर्म और बौद्ध धर्म, मनुष्य की पूर्णता को स्वीकार करता है। अन्तर केवल भाषा का है। सनातन धर्म और उपनिषद मनुष्य को स्पष्ट रूप से परमतत्व ही मानते हैं और कहते हैं ---'जीवो ब्रह्मैव न पराः अर्थात् 'जीव ब्रह्म ही है और उससे अलग नहीं है।' जैनधर्म, बौद्ध धर्म मानव को देवताओं से श्रेष्ठ मानते हैं। इसी प्रकार यहूदी धर्म, इसाई धर्म और इस्लाम धर्म भी मानव को 'अश्रफुल मखलूक़ात', अंग्रेज़ी भाषा में (crown of creation) अर्थात् सृष्टि का मुकुट मानते हैं। सन्तमत तो पहले ही मानव को देवताओं से श्रेष्ठ मानता है और उसके निजस्वरूप को परमपुरुष का अंश नमूना

स्वीकार करता है।

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज ने स्थान-२ पर मनुष्य की इस पूर्णता को सरल भाषा में व्यक्त किया है। उनके कथनानुसार :--

'पहचान ले अपने को,
तो इंसान खुदा है;
ज़ाहिर में है गो ख़ाक,
मगर ख़ाक नहीं है।
जलवों की ख़ता क्या,
जो दिखाई नहीं देते;
खुद देखने वालों की नज़र,
पाक नहीं है।'

मानवता धर्म इसलिए "शिवसंकल्प" पर ज़ोर देता है, ताकि मनुष्य की नज़र पाक हो जाये और वह अपने निज अविनाशी स्वरूप का अनुभव कर ले, ताकि उसे पता चले कि मनुष्य केवल मनुष्य नहीं है :--

'अब आदमी कुछ और हमारी नज़र में है,
'जबसे सुना है यार लिबासे बशर में है।'

अन्त धार्मिक सत्संगियों की सभा में सभी ने सत्संग को इतना ध्यानपूर्वक सुना, मानो वे सब समाधिस्थ हो गए हों। अन्त में सभी सत्संगियों ने सामूहिक समाधि का अनुभव किया और शाकाहारी भंगरे के बाद रात के करीब 11 बजे अपने - 2 घरों को रवाना हो गए। हम भी श्री महाराज के निवासस्थान पर रात्रि के विश्राम के लिए पहुंच गए।

दूसरे दिन प्रातःकाल डा. हरि शर्मा के घर पर प्रातःकाल 5 बजे सामूहिक समाधि आयोजित थी। डा. हरि का

निवासस्थान श्री विश्वामित्र के निवासस्थान से जुड़ा हुआ है और दोनों के बीच में रास्ता खुला है। अन्दर - 2 से ही हम डा. हरि के घर पहुंच सकते है। ठीक पौने पांच बजे डा. हरि विश्वामित्र के निवासस्थान पर मेरे कमरे में पहुच गए। मैं पहले से ही तैयार था। जब हम दोनों श्रीमती शान्ति मराज के साथ हरि के घर पर पहुंचे, तो वहां 50-50 मील दूर से आये हुए स्त्री-पुरुष और युवा सत्संगी मौजूद थे। इस अवसर पर, हर एक सामूहिक समाधि की भांति श्री यतेन्द्र नाथ, राम प्रसाद अपना विशेष रिकार्ड करने का यंत्र लाया करते हैं और उसमें सारी कार्यवाही बहुत सुचारु रूप से रिकार्ड हो जाती है। उस दिन भी श्री यतेन्द्र नाथ ने उस मशीन का उपयोग किया और विशेष ध्वनि यंत्र द्वारा समाधि की सारी कार्यवाही रिकार्ड की। हमने सबसे पहले सामूहिक ॐ की ध्वनि से योगिक व्यायाम किया। सभी सत्संगियों ने सिद्ध आसन में बैठकर ही प्राणायाम का का अनुसररण किया। इसके पश्चात् सभी ने मिलकर एक दूसरे के हाथ पकड़ कर आंखें बन्द करके सामूहिक ॐ ध्वनि की। इसके पश्चात् सभी सत्संगी 3 बन्द लगाकर "राधास्वामी" सुमिरन में मस्त हो गए और शब्द योग का अनुभव किया।

उनकी यह समाधि आधा घण्टा तक चली। इसके पश्चात् सभी सत्संगियों ने एक दूसरे का हाथ पकड़ कर 3 बार ॐ की ध्वनि और 3 बार 'हरि ॐ' की ध्वनि उच्च स्वर में की। समाधि के बाद की ॐ की ध्वनि में विशेष शक्ति होती है। इस ध्वनि के पश्चात् मैंने उन्हें उपनिषद और वैदिक मंगलाचरण से सभी को आशीर्वाद दिया। अन्त में सभी ने "ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!" का उच्चारण किया। डा, हरि और उनकी पत्नी ने सभी

को नाश्ता दिया, जिसके पश्चात् सभी व्यक्ति अपने 2 घर को रवाना हो गए। इस सामूहिक समाधि में हमेशा की भांति डा. दिनेश कुशवाहा, श्री गुरुबल सिंह, पाँच-छः और स्त्रियां पोर्ट आफ स्पेन से सम्मिलित होने के लिए आईं। इससे यह प्रमाणित होता है कि ट्रिनीडाड निवासियों में आध्यात्मिकता के लिए जबरदस्त चाह है।

इसी चाह के फलस्वरूप 28 मई तक श्री विश्वामित्र के निवासस्थान पर कृष्ण मन्दिर और में पोर्ट आफ़ स्पेन में जितने भी सत्संग हुए, वे बहुत प्रभावशाली थे। मई 29 प्रातःकाल मुझे साढ़े छः बजे अमेरिका रवाना होने के लिए पोर्ट आफ स्पेन हवाई अड्डे पर पहुंचना था। मेरी विदाई के लिए यहां पर वे सभी लोग उपस्थित थे,जो 21 रात्रि को उसी स्थान पर स्वागत के लिए आए थे। इस प्रकार मैं 29 मई को ही बोस्टन हवाई अड्डे पर पहुंच गया, जहां पर श्री बी. बी. भटनागर, उनके सुपुत्र डा. राहुल हवाई अड्डे पर मौजूद थे। हम 2 घंटे के अन्दर डा. भटनागर के घर नाशुआ में पहुंच गए। उस दिन हमने केवल विश्राम किया। फिर भी नाशुआ के सत्संगी डा. भटनागर के घर पर आ गए और सबने लक्ष्मी पूजन किया। इसके पश्चात् मैंने सत्संग में दीपावली के पर्व की व्याख्या की। मैंने बताया कि भारत में राखी, विजय दशमी, दीपावली और होली सभी जातियों के लोग मनाते हैं। वास्तव में इन चार पर्वों का सम्बन्ध मानव के चार पहलुओं से है, जिसे हम शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा कहते हैं। यह पर्व हमें याद दिलाते हैं कि वर्ण व्यवस्था आध्यात्मिक दृष्टि से केवल इतना महत्व रखती है कि हरएक व्यक्ति रक्षा-बंधन

के दिन ब्राह्मण बन जाता है। विजयदशमी के दिन वह क्षत्रिय बनकर अधर्म रूपी रावण का संहार करता, है दीपावली के अवसर पर वह लक्ष्मी का पूजन करके अपने अन्दर वैश्य भाव होने का अनुभव करता है। और होली के समय पर हर एक व्यक्ति हर प्रकार के रंगों में रंगा जाकर अपने अन्दर शूद्र तत्व का अनुभव करता है। होली में विशेषकर हर जाति से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति, हर प्रकार के रंगों में रंग जाते हैं और यह प्रमाणित करते हैं कि शारीरिक रंगों के पीछे हरएक के अन्दर विशुद्ध आत्मा हैं। मेरे इस सत्संग से सभी उपस्थित सत्संगी बहुत प्रसन्न हुए। इस मासिक संदेश में यहां तक के दौरे की सूचना पर्याप्त है। इसलिए मैं अगले मासिक संदेश तक आपको हार्दिक आशीर्वाद और सद्भावना देता हूं और चाहता हूं कि आप शरीर, मन और बुद्धि के भेदों से ऊपर उठकर आत्मिक एकता का अनुभव करें। सबको राधास्वामी,

आपका फ़कीरमय

मानव

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

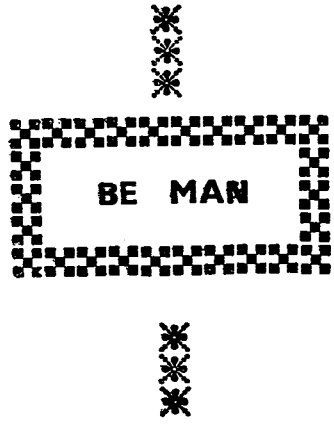

Tuesday, 10th August, 1993

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

The Views of Some of the Disciples

OF

Data Dayal Maharshi Shivbrat

Lal Varman Ji Maharaj

BY

SHRI MOHAN LAL NAYYAR

I had the golden opportunity of coming into contact with his Holiness, Supreme Saint, Perfect Master Data Dayal Mehrishi Shiv Brat Lal Ji Maharaj in 1934. I have already given in the book 'Nayyare-Aazam' detail, the account of my meeting him. To be brief, I used to be ailing and I needed a spiritual doctor. Nature always fulfils the earnest demand. Consequently, I had the opportunity of meeting that great person whose gracious guidance transformed me from animal to human being, even though, I feel that the next stage of my evolution is far away.

I have never in my life, come across such a

great personality as Data Dayal Ji Maharaj. As a matter of fact I have no need to see anyone else after my contact with him. I cannot describe his unique qualities, because he was replete with virtues. He was a unique specimen of human kind, a great sage among the sages, a great mystic among the mystics, a great meditator among the meditators, a great ascetic among the ascetics a king of the guides, a master of masters, most affectionate friend among friends, unmatched in worthiness, an embodiment of love, and the greatest benefactor of humanity. Anyone who came in contact with him was freed from the burden of the Karma of several lives.

I had the opportunity to be associated with him from 1934 to 1938. Once I enquired about the publication of his biography. He replied, "Neither has it been written, nor do I have any desire to get it written. A person who wants to see and know me should study my writings. In my literature resides my soul." Once I also expressed my keen desire to get his literature published. He said that it was unnecessary. I sometimes think that very few people could benefit fully from him, during his life time and still fewer will be able to benefit by studying his writings, when he is not present physically.

The people are people. They are being caught

up in the meshes of sensuousness. They have no attraction for the spiritual way of life which is the inexhaustible and highest source of happiness. Yes, there are some examples of worthy aspirants, who could benefit from him when he was living, and some can also reform their worldly and spiritual life even today, through his writings. In the beginning I had given up the idea of writing the biography of Mehrishi Ji Maharaj, but in 1954, I took up this responsibility after being inspired by Hazur Param Dayal Pandit Faqir Chandji Maharaj of Hoshiarpur. Since he firmly believes that Mehrishi Ji was the real incarnation of the Supreme Being, so he said that I could not accomplish this great responsibility in a short time. Consequently I spent three years in sorting out and copying down articles from Data's literature.

Had the circumstances been favourable this biography would have been published two or three years earlier. But the difficulty arose, when Mr. Ganpat Rai Verman of Hyderabad Deccan expired suddenly, because he had been editing the monthly journal 'Dayal' in obedience to the order of Hazur Shri Nandu Bhai Ji Maharaj and as such, the writing and publication of the Urdu book could not be completed anywhere other than in Hyderabad Deccan, since honorary workers and devotees are not easily

available. Even now that I have completed the manuscript God knows when and in what language, Urdu or Hindi it is going to be published.

This biography is unique in its own way. The study of this book itself will confirm the statement. In a biography either the events of the life of an individual, or his teachings are high-lighted. But in my opinion the teachings of a great man should be particularly emphasized because it will be more beneficial than a mere biography. Consequently, more attention has been paid in this book to the teachings of Mehrishi Ji Maharaj, systematically and chronologically, so that the readers may benefit and make their lives sublime. So far as the biography is concerned, whatever mattter could be collected, has been utilized. In the beginning I had the idea that I should cull the biographical events of Mehrishi Ji Maharaj from his vast literature. However, due to the paucity of time and other reasons I could not do so. Consequently I thought it sufficient and proper to include in this book, only some of his selected writings and teachings.

Mehrishi Ji Maharaj shone like an effulgent sun in the spiritual firmament of the nineteenth and twentieth centuries, because God had blessed him with

Divine insight. He saw the sun of truth, which others could not see. His books which cannot be counted easily, are a proof of this fact that he was a divinely enlightened great person. He wrote more than three thousands books. The list of seven hundred fifty books has been included in this book. They are detailed in the second volume (this translation is confined only to the first volume) I have about three hundred books in my personal library. In the book entitled "Adbhut Upasana Yog, which was written last of all, Mehrishi Ji himself has stated that the number of books authored by him would run into thousands. He wrote scores of books on the Vedas, Shastras, Puranas, Upnishads, Philosophical systems, the Bhagwadgita, Ramayana etc. He wrote on every religion, denomination, schools and sects of all religious traditions of the world. He honoured the sentiments of all and did not like any criticism o aspersions cast on anyone of them. It is difficult to enumerate the journals and magazines, started by him. The wonder is that all of them were replete with his own writings. Among them Arya Gazzette, Sadhu, Masand, Punjabi Hero Tattvadarshi, Saraswati Bhandar, Vigyani Avadhut, Sant, Sant Samagam, Sant Sandesh, Ramta Ram, Man Magan Vedanta Magazine, Dhaulagiri Parvat, Sumeru Parvat and

Satsangat are specially worth mentioning. Among his books Vigyan Krishnayan, Vigyan Baudhayan, Vigyan Santayan Mahabharata, Santmal, Bhaktamal, Yoga Vashishta, Kabir Yog, Nanak Yog, Radhaswami Yog, Kabir Beejak, Surat-Shabda Yog, Kalpadrum, Vichar Kalpdrum, Rajasthan Ka Itra, Vedanta Philosophy, The Commentaries on the Upanishads and Hindostan Ki Devian are well known. Whereas the wrote copiously on Hindu Dharma, Buddha Dharma, Jain Dharma, Christianity, Islam, Sufism, Sikhism and Kabir Panth etc., he produced such a vast literature, on Radhaswami Faith or the religion of Saints, that goes beyond imagination. Besides this he wrote about seventy novels, which may be called fiction, but in reality those are the unfoldment of spiritualism, truth and moral principles. Among his Shahi series of novels, Shahi Lakarhara and Shahi Yogi, and among Moti Series, Aabdar Moti and Tabdar Moti novels became most popular and are read with interest till today.

He was opposed to false Gurudom. His whole life was spent in service to humanity. He was a embodiment of love and sublimity and was absolutely free from jealousy and bias.

There was such a power in his writings that they

would enter into the heart and soul of the reader. He was a renowned poet. He could write thirty to thirty two poems of high order in a day. Regarding prose, he was able to write one book overnight. An ordinary person's mind would boggle on seeing his extraordinary capability and acumen. Had he desired, he could earn millions of rupees through his writings. But he was inclined to lead a humble life of non-attachment, so he never cared for money. He departed from this world at the age of seventy-nine years. He continued to serve and work for the well being of humanity till the last day of his life. He had merged into God and had become God himself.

He had the premonition of his death two weeks before his departure to the final Abode. He wrote verses full of non-attachment. These were published in the book entitled. "Nayyar-e-Azam and the Urdu Journal Sari Duniya in the month of April 1939.

Mohan Lal Nayyar
Honourary Joint Secretary,
Dayal Manavata Pracharak Sabha
10, Kirti Nagar,
New Delhi.

Dated :
April 13, 1963

Disciple :--Then what is the destination ?

Faqir :--The destination is the Radhaswami state. As long as there is life, there will always be spiritual manifestation. One should behave with calm detachment. This can lead one to a spontaneously spiritual way of life. Listen to what saint Kabir has said : "The spontaneous state of meditation is the highest state. Ever since the grace of the perfect Master affected me, my Surat has not moved. It has stabilized itself in itself. Now I have not to close my eyes,shut my ears,nor have I to undergo any physical suffering. I can see the Supreme Being, smiling continuously. Whatever I utter is the name of the Lord only, whatever I hear is the name of the Lord only, whatever I eat or drink, is the worship of the Lord. The forest or the house are one and the same

for me, since I have overcome the feeling of duality of any kind. My prostration to the Lord is my sleep and I do not worship any other God than the Supreme Being. Everlasting sound has permeated my mind and the undesirable urges have been renounced."

Saint Kabir said, "This state of experience is that of spiritual intoxication, which I have expressed in my songs. There is a supreme joy beyond the feeling of pleasure and pain and I am constantly merged into that bliss."

Being and becoming have always existed. Wherever there is Being there will always be the current of that Being. Being always continues to manifest Itself in becoming. Before his death Data Dayal Ji Maharaj expressed his current ideas to Mohan Lal Nayyar through letters to him. These letters were later published in the form of a book entitled Nayyar the Great. I recommend the book to you, if you want to know the Truth.

Disciple :--Hidayatnama says that this Truth was never revealed to anyone before. Is that true ?

Faqir :--To some extent that is true, but most people do not understand what this really means.

Every religion that exists in this world sets an ideal before it to be achieved, and preaches that one must worship that ideal. Some religions accept God, or Khuda. Some accept Rama or Krishna, or some other form, as their ideal. In fact, the ideal is the mental construct of the worshipper himself, who strives to achieve it Radhaswami Dayal (Swami Ji Maharaj) has expressed beau ifully how all religions function under a great illusion and worship their own thought form. I also say that idealism is an illusion. In fact, one should try to make the inward journey to recognize one's own self and to lead a normal life, without being affected by emotions. Rituals, religious practices, meditation, enlightement,Yoga and worship are all the mental constructions of man's own self,and hence are mere illusion. Almost every religion of the world is victim to this illusion. That is why Radhaswami Dayal has taught that one should recognize one's own Self and not be misled by others.

Disciple :--Many aspirants depend upon Guru who have left their physical body. Is this wrong ?

Faqir :-It is not wrong, but when you depend on the Guru who has left his phsyical body, you will be on your mental level only, because your own mind has created this ideal. The Radhaswami faith

enjoins you to give up dependence on physically departed Gurus, in the best interest of the disciple. Please understand, there is no need of changing your ideal. The ideal you have chosen or adopted is perfect. There is no need at all of establishing a new one. Whatever you meditate on is generated by your own thoughts anyway. The external Guru is only a support. You can certainly benefit from the spiritual discourses, but it is your own faith and conviction which works within you.

Mind itself is the master, the Guru, and also the disciple. Next to mind, the inner sound is the real Guru. But revelation of Truth depends on the Grace of the Guru who himself is a liberated person. He will reveal the secret of Truth to you by directing you according to your mental construction. Always remember that this secret of Truth cannot be revealed without the help, or grace, of an external perfect master. Attend the spiritual discourses of your Guru and try to grasp what he says and the secret will be revealed.

Disciple :--Why is the spiritual urge never satisfied and peace not attained ?

Faqir :--There are different reasons for different

people because people have different backgrounds. There is no universal remedy in the attainment of peace. In my opinion, everyone should go to his own Guru who will reveal the secret of peace to him. A perfect master always gives directions according to the circumstances and nature of a particular person. Satsang, the spiritual discourse, is of two kinds. One is general and the other particular. The satsang in which general matters are discussed is called a general Satsang but a particular Satsang is imparted to particular persons through personal dialogues. For this reason it is essential to go to the refuge of the perfect master.

Disciple :-How many Sadgurus are there on this earth ?

Faqir :--Sadguru, the perfect master, is the name of the Pure Being who can wipe out the illusion of Guruism from the mind of his disciples. Now you can decide yourself how many Gurus there are.

Disciple :--Is there any Sadguru in your estimation ?

Faqir :--I don't know, for I never made a search.

The will of God brought me in contact with the Pure Being, Data Dayal Mehrishi Shivbrat Lal Ji Maharaj. I spent my whole lifetime in his association. I had a keen desire to understand the reality of Radhaswami Faith. I came across the book Hidayatnama and Sarbachan (the books of Radhaswami Faith) revealed by Swami Ji Maharaj. Since the departure of my Master to the Final Abode, I have engaged myself in following his mission, to share the Truth which I gained through my experience with every aspirant as, long as I live.

Once, in Beas, I had the privilege of meeting the supreme saint Baba Sawan Singh Ji Maharaj. Whose association revealed to me that he was a real saint who took care of suffering souls. However, I felt that his discourses were not sufficient to satisfy the curiosity of people like myself.

Disciple :--Is there any worthy saint living in our time, in your opinion ?

Faqir :---I have not found anyone thus far, but I know that I have no right to pass any judgement. There may be many saints, there may be none, I don't know. However I intend to attend to all the discourses of Radhaswami Faith and want to be sasociated with all those saints who are helping the

ignorant people like myself toward Truth by their guidance. In fact, the whole world is full of saints for me.

Disciple :--Are you not Gurmukh, one who understands and follows his Guru ?

Faq r :--No, had I fully understood the words of my respected master, I would not have struggled so hard for so many years of my life. There is no doubt that I adopted the Sadguru, Data Dayal Ji Maharaj as my Guru, my Saviour, but I didn't understand the true meaning of the initiation. I would have continued to grope in darkness if my master had not uplifted me. He gave me my Mantra and told me the easiest way of continued meditation. He directed me to meditate on that name, even when engaged in day-to-day work, and to absorb myself in Light and Sound to attain the level of thoughtlessness in my leisure. I was keen to see God face to face but suffered from many illusions. The Supreme Being assumed human form in the person of Data Dayal Ji Maharaj to uplift fallen people like me and to initiate me. My early suffering was on account of my ignorance, but eventually I reached my destination.

Listen to a poem, written by Data Dayal Ji

Maharaj, which I used to sing with great devotion and dedication.

When I became sinful,
you became the redeemer,
When I sank in suffering,
you became the Saviour,
Had demonic Ravana not taken birth,
How would Lord Rama appear on this earth.
When King Kansa, the cruel,
did everything amiss,
Then appeared Lord Krishna,
the giver of bliss,
When I became a sinner,
you incarnated yourself,
Had I not been a sinner,
who would know your powerful self?

(To be continued)

Inter-Religious Dialogue For -Inter faith Fellowship in Hinduism and Christianity

H.H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL
Dr. I. C. SHARMA

Whether in the Bhagavadgita or in the contemporary Bhakti Marga of the saints (Sant Mat), Love has been accep'ed as the source, the means and the goal of all creation. To sum up, this Para Love of Hinduism, past and present, it would be appropriate to say that, all approaches to God-realization are the paths of Love. In fact, Love is everything that exists, lives and has its being. The Supreme Being is not only the manifestation of Love, but He Himself is Love. All radiation which is at the root of cosmic creation, and which is the source of cyclic process of creat on, evolution and destruction, is nothing but the flow of currents of Love. These currents of Love flowing from the Feet of the Supreme Compassionate Lord (Dayal Purusha), have created systems (Mandalas) at various levels of existence in the

cosmos. These currents are the forces of attraction or Love. All constructive as well as destructive forces functioning in the cosmic creation are Love. All atoms are joined together by the forces of love. All relations of Love and harmony, like and dislike, attachment, are basically Love. Ground is one ; its expression is two-fold. One form of Love is attraction, the other is repulsion. One draws near the other withdraws from object. These functions appear different, but actually both are emanations from the same force of Love. Only outwardly are they different. One aspect is the abundance of perfection, the other being relative deficiency.

As a matter of fact, even this relative abundance and deficiency are not really existent, we state this only from a relative point of view one of them is the Self (Lord), Spirit (Purusha) and the other matter Nature (Prakriti). One is the soul and the other is body. One is the being (Sat), and the other is non-being Asat). One is light and the other is shade. One is the Supreme Compassionate Indestructible Ultimate Person-Final Abode, and the other divisive destructible spatio-temporal and temporary resort of the Soul. The compassionate domain of the Lord has abundance of Love, and the temporal one has deficiency of it. But beyond both these

realms there is Infinite Existence of Perfect Love. That is the Goal of the followers of the Path of Love.

There is no doubt that the unqualified Love of God and the Love of man, is the essence of every religion Eastern or Western, Hinduism or Christianity. One point to be noted here is that man's totality, his physical, mental, intellectual and spiritual functions are all to be dedicated and subordinated to the sole purpose of attaining God. According to Hinduism, man as the replica of God, is an integrated whole of the body, mind, intellect or ego, and pure Soul or Self. Hinduism has propounded the four Values or pursuits of life : Artha or wealth for the development of body, Kama or satisfaction of desires or Love for the development of mind, Dharma or righteousness for the development of intellect, and Moksha or spiritual perfection, the attainment of the sonship of God for the consummation of the soul. Thus the Love of God with all one's heart, with all one's mind and with all one's strength, and all one's soul (Self) corresponds to the pursuit of the above stated four Values of Arth, Kama, Dharma and Moksha for the development of body, mind, intellect and for the consummation of Soul's union with God.

Even though all the major religions of the world advocate Love, but somehow only Hinduism and Christianity lay emphasis on the practice of Love-human and divine. Lord Krishna, while defining a true devotee, a staunch lover of God, says : "One who sees Me everywhere, i.e. in every being, and sees every being in Me, is not lost to Me, nor am I lost to him."11

It is important to understand the import of this unqualified Love which exactly is the elaborated form of the unqualified Love of Jesus Christ. By understanding that a true lover of God realises His presence everywhere, means that he loves every one as the expression of God. In other words, it advocates the universality of Love. Jesus Christ has elaborated this very nature of divine Love by saying that a Christian must love his enemy.

The statement of Lord Krishna, which enjoins that a true lover of God should see everything in Him, emphasizes that the aspirant should depend only on God and nothing else. The universality of Love is possible only when the aspirant recognizes the presence of God in friend and foe alike.

In the same context Jesus has also said, "I say unto you that ye resist not evil, but whosoever shall

smite thee on thy right cheek, turn to him the other also."12

The practice of loving the enemy and turning the olher cheek to the aggressor is possible only when the aspirant sees God everywhere and everything in God. Loving the enemy is possible only wheu we realize the presence of God in every perpon. Same is the case with non-retaliation to the aggressor who smites one's right cheek. Suppo ing, some one spanks a believing Christian on the right cheek and the latter, forgetting the unqualified Love propounded by Jesus Christ, raises his fist to retaliate to the aggressor, and the aggressor's form changes in that of Jesus Christ, then and then alone the believing Christian will turn the other cheek towards the aggressor saying, "Oh Johnny, I did not know that you are Christ. Please give me the other spani on my left cheek. "Both Hinduism and Christianity complement each other and make unqualified Love of God and the Love of man as the rock and foundation of a True Religion.

In the Bhagavadgita ethics and metaphysics are the integrated Pathway to Lord thy God. This Love makes a person free from all fears. God is ready to go to all lengths to embrace His devotee, if the latter has true devotion and Love for the Supreme

Person. The Path of Devotion has a great advantage because it makes a person fearless, and God never fails to save His dear devotees. The Bible says that whosoever believeth in Christ and God, will not perish. The Bhagvadgita also declares, through Lord Krishna, that His devotee never meets destruction.

All the messengers of God in the East and the West have spoken in the same strain, and have behaved in the same fearless manner when they are God-intoxicated.

A person who is truely in love with God, according to Hinduism as well as Christianity, must rise above all the formalities of caste, creed and sect, and must transcend all the relative differenees between man and man, and between religion and religion.

This comparative exposition of Hinduism and Christianity leads us to the conclusion that the Path of Divine Love does not demand that the followers of one religion should be converted into another. They should rather feel Unity in D.versity. Oneness of the God and Divine experience amidst the different approaches of worship and rituals. This very experience may be termed as God-consciousness, Christ-consciousness, Krishna-consciousness etc. Man's real

nature is Divine, and each and every individual has potentiality to attain Perfection. Let people be Really Awakened and experience God-consciousness in themselves by understanding the True meaning of the Universals in their particular Faiths. This Truth is sure to work for the Fellowship of all Faiths.

(concluded)

The donation made to the Faqir Library Charitable Trust (Regd.) Sutehri Road, Hoshiarpur is exempted Under Section 80 G. of the Income-Tax Act 1961 as per letter of the Commissioner Income-Tax Jalandhar Letter No. JUDL./TRUST/13999/14001 Dated 31-12-91 upto year ending 30-3-1994.

Monthly Message

OF

H. H. PARAM SANT SADGURU HAZUR
MANAV DAYAL DR. I. C. SHARMA

My dear Ownself in the form of aspirants,

Blessings of the Supreme Compassionate Lord may help you every moment.

I had given you the tour information upto 17th May, 1993 in my last monthly message. I had told you that I had to fly from Indra Gandhi International Airport, Delhi to America via London on the same night at 9 p.m.

Even though I had purposely avoided publicizing the informatiom of this program, yet this time Ach. K. P. Varma and his worthy wife Smt. Sudha Varma, Shri Harmindar Singhji and his wife Smt. Manjit, Shri Pavan Sharma and his wife Archana from Delhi area, Ach. Shabdanand and Km. Sadhana

Saxena along with her sister Smt. Adarsha accompanied us to the airport in motor cars from the residence of Ach. Varma. Besides these persons Sqdern. Leader Ajay Bhatnagar and Indian Air Lines ground Engineer Mr. Namit Saxena arrived at the airport to bid fare-well to me with love and devotion. I didn't want people to take the trouble of coming to the airport, yet their love was more powerful, These persons returned from the airport at 6- 0 p.m. after bidding good-bye to me.

My flight arrived in London at the right time. After waiting in transit Lounges in London airport for a few hours I left for New York by American Air Line flight at 9 a.m. arriving in New York at about 11 a.m. the same day. Shri Balbinder Singh, his brother Gittu and his brother-in-law Mr. Sunil Sethi were present to wel-come me at the airport. As a matter of fact, Ach. Thelma Carter of Maryland had come to receive me at New York. Since it would have taken longer time for her to reach the J.F.K. airport, she had requested Mr. Balvinder Singh to receive me on her behalf at the right time. I arrived at the special terminal of American Air Lines at J.F.K. at 11 a.m. However, one has to walk more than a mile from the aeroplane to the immigration and custom counter. Since I am a senior citizen of

America, being above sixty five years of age, I was conveyed from the aeroplane to the exit of the terminal in electric chair which took me only 25 minutes to reach the place where Mr. Balvinder and party were waiting for me. We arrived at the new magnificent house of Mr. Balvinder in Morris town, New Jersey within two hours. Only last year I had performed the Pooja of the opening ceremony of this palatial building while it was under construction. 3-storied magnificent residence is most commodious and equipped with all the modern facilities. I stayed with Mr. Balvinder for the whole day most of the time. The satsangis from Morris Town and vicinity continued to visit me during the day. In the morning of the 18th May I flew from New Ark, New Jersey airport at 8 a.m. and arrived at Washington airport at 9 a.m. I stayed at the residence of Ach. Thelma Carter in Maryland over night. During the day time many American Satsangis came to meet me at Thelma Carter's residence. On the 19th morning I flew from Washington airport for Cleveland to stay with my older son Arun and his wife Manju and arrived there early after-noon. My older son Arun received me at the Cleveland airport. I would like to remind you that Thelma Carter is a miraculous devotee and has psychic powers. She had met Param Dayal Ji Maharaj three times in critical form after he had

departed to the Supreme Abode in 1981. I would like to inform you that Bhagya Mataji appeared physically to Ach. Thelma Carter between 30th night and 31st morning and gave her a special message for me to convey to me on my visit to Maryland. During this experience Thelma called me in Hoshiarpur on telephone and gave the details of that experience. She also told me that Bhagya Mataji wanted all the satsangis to know through her message that she was perfectly alright and that she had to make sacrifice for chiselling the personality of Manav Dayal Ji Maharaj so that his personality may be strengthened. Therefore she wanted that no satsangis should entertain any feeling of revenge in this critical situation.

I am desbribing all this, because the incarnation of Param Dayalji Maharaj was for the purpose of human well-being and elevation culminating in human pefection. His exposition of Indian approach to spirituality is un que. His spiritual preceptor Maharshi Shiv Brat Lal Ji Maharaj has in his colossal mass of spiritual literature expounded eternal truths most lucidly and seccinctly. Such revelatory events strengthen our faith and we find a firm foothold to feel stabilized in the eternal principles of Humanism, Humanitarianism and the eternal spiritual Principles

called Sanatan Dharma. On the 21st May I reached Trinidad, International Airport, Port of Spain at midnight. As soon as I came out of the Customs Office, I was delighted to meet Mr. Vishwamitra Maraj, Dr. Hari, Mr Gurubal Singh, Mr. Avtar Singh Malhi, Mrs Barbara Bruce, her son Yogesh and some other devotees. After exchange of pleasantaries, they left for their places of residence eagerly awaiting the congregational Satsangs on the days to follow. Mr. Maraj and Dr. Hari conducted me by car to the former's residence. Mrs. Kanti Maraj was eagerly awaiting us. During my six days' sojourn there the Maraj family served me most warmly. The next day a grand satsang was held at the Santa Cruz residence of Mrs. Barbara Bruce. Next morning Mr. Guru Bal Singh reached Mr. Maraj's Jewellery Store to fetch me. Mr. Maraj had recently changed the name of his Maraj Jewellery Store to Om Jewellery Store. This indicates his trend towards renunciation. He has transferred the ownership of the store in the names of his wife and three children. He works at ths store as a paid employee now. The striking feature of this store is the spirit of loving service. Every year I spend two or three hours at this store and during this span the workers get an opportunity to meet me individually and receive spiritual guidance. From the store Mr. Guru Bal Singh escorted me to

his residence where he and his noble wife Mrs. Kanwaljit served me sumptuous vegetarian lunch. After the lunch I enjoyed fiesta. One hour before the commencement of Satsang we left the place and stopped over for half an hour at the house of my very dear Christian disciple Mr. Elos. He treated me for back-ache with his electronic equipment with the result that I got appreciable relief. At the house of Mrs. Barbara Bruce about sixty devotees were eagerly awaiting us. I wonder from where she and her son had learnt the precisely ceremonious Indian mode of reception of Spiritual Preceptor. Each and every devotee sang 'Jai Guru, Jai Guru' (Victory to the spiritual Master) and garlanded me. The whole ceremony took about one hour. I told them that such welcome and devotional service was tantamount to honouring themselves because each and every soul is potentially, perfect. It is the function of the'Guru' to make the patent the latent. During the satsang I made it clear that all the World Religions such as Sanatan Dharma,Christianity,Islam,Sikhism, Judaism, Jainism and Budhism believe in the potential perfection of the human soul. The differences lie merely in the nomenclature. The Upanishads declare openly that there is no difference between the individual soul and the Universal soul in essence Maharshi Shiv Brat La,

Ji Maharaj has affirmed time and again that man is God playing the fool. The moment he dispels the darkness of his ignorance and realizes he essentiality, he is no other than the Supreme Self. The Religion of Humanism emphasizes strongly that man should entertain pure and positive thoughts only leading to purity of mind, sharpness of perception and intuitive insight. Rightly sings a poet saint :

Since I have realized the divinity of man's soul, my attitude towards humans has undergone total transformation.

The congregation listened to the spiritual discourse with rapt attention and appeared towards the fag end of it, as if enjoying the bliss of 'Samadhi' (trance). After enjoying a vegetarian dinner, the devotees retired to their homes. We returned to Mr. Maraj's house and rested for the night.

Next day for 5-00 a.m. was fixed a congregational Samadhi sitting at Dr. Hari Sharma's house which is adjacent to Mr. Maraj's. At Dr. Hari's house I found a fairly large number of Satsangis waiting to join the Samadhi Sadhana (practice). Some of them had come from fairly distant places. On such occasions Mr. Yatindra Nath and Mr Ram Prasad usually bring their electronic equipments for

recording the whole programme. This time also they did the recording.

We started by resounding the sacred syllabl 'Om' together. The participants did Pranayama, sitting in Siddhasana Yogic posture. Then they held each other's hands in a circular formation and uttered with rhythmic resonance 'Om' again followed by Simaran of the holy nam 'Radhaswami' and went into deep meditation. This lasted for half an hour and at the conclusion, all resounded 'Om' and 'Hari Om' finishing with 'Om Shanti, Shanti, Shanti. (In the name of God, Peace be to all)

Mrs. and Dr. Hari served all with sumptuous Breakfast. Then the devotees dispersed. As before, to join this, congregational sitting Dr. Dinesh Kushwaha, Mr. Guru Bal Singh and half a dozen ladies had come for the Satsang all the way from the Port of Spain. This is clear evidence of the great zeal of the residents of Trinidad for spiritual advancement. Upto the 28th of May, regular satsangis were held everyday at nifferent places. On the 29th morning was present at the Port of Spain for my departure to America. To give me a hearty send off numerous devotee friends were there. On the 29th I reached Boston airport where I found Mr. B. B Bhatnagar and his worthy son Rahul were present to receive me. They took me to their residence in Nashia where I took rest for the day, though a few satsangis visited me. We all celebrated Diwali at night and offered worship to Lakshmi, the goddess of wealth. Then

I explained the significance of this worship so popular in India.

In India all people celebrate joyously the four festivals, namely, Rakhi, Vijai Dashmi, Deepawali and Holi. These are concerned with the four aspects of human personality, namely body, mind, intellect and soul. These four festivals remind us of the symbolic significance of each of the four castes prevalent in India. On the day of Holi, everyone feels like a Brahmin (the spiritual leader community) and experiences soulhood. On the day of Vijai Dashmi everyone feels like a Kshatriya (the warrior community) and experiences the victory of Ram or righteousness over Ravana or unrighteousness. On the day of Deepawali everybody feels like a Vaishya (the trading community) and experiences affluence and worships the goddess of wealth. On the day of Holi everybody revels in play of colours and feels like a Sudra (the servitor community) recognizing that behind the multiplicity of colours there is one white radiance or the brilliance of the Soul. The present satsangis found the discourse illuminating and were immensely delighted.

Let this much suffice for the present Monthly Message. Farewell, till the next Monthly Message. With my hearty blessings to each and all the beloved satsangis, I conclude hoping that you will all be able to transcend the illusionary multiplicity of appearances and reallze the unity of One Reality behind the phenomena : With Radhaswami to one and all.

Your in Faqir
Manav

शोक सूचना

सत्संगी जन को दु:ख के साथ सूचित करना पड़ता है कि चिंतल बस्ती, हैदराबाद (आंध्र प्रदेश) के सत्संगी श्री ए. नारायण के आत्मज श्री ए. नवीन का आकस्मिक स्वर्गवास गत 5 अप्रैल 93 को हो गया। श्री नवीन परमसंत सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराज के प्रेमी भक्त थे, तथा समस्त परिवार महाराज का भक्त सत्संगी है।

मानव परिवार श्री ए. नारायण परिवार के इस दु:खद बेला में सम्पूर्ण सहानुभूति सहित उनके दु:ख में सम्मिलित है तथा परम पिता राधास्वामी दयाल से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को चिरशाँति प्रदान करें तथा शोकाकुल परिवार को इस क्षति के सहन करने को शक्ति दें।

सत्संगी जन को बड़े दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि हजूर परमदयाल जी महाराज के समय से ही मानवता मंदिर, होशियारपुर के हस्पताल में बड़े लम्बे समय से रोगियों का इलाज पूरी निष्ठा, और सद्भावपूर्वक करते हुए डाक्टर (टी. के. जोशी) जी 26-7-93 को प्रात: 9 बजे के करीब अचानक हृदय गति रुक जाने से परलोक सिधार गए

मानव मन्दिर परिवार डा. जोशी जी के परिवार की दु:खद घड़ी में पूरी सहानुभूति के साथ सम्मिलित होते हुए मालिकेकुल राधास्वामी दयाल से सच्चे हृदय से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को चिर शांति प्रदान करें तथा शोक-संतप्त परिवार को इस अपूर्णीय क्षति के सहन करने की शक्ति दें।

❋ आवश्यक सूचना ❋

सूचित किया जाता है कि डा. टी. के जोशी के स्वर्गवास के कारण मानवता मन्दिर, होशियारपुर के हस्पताल में एक क्वालिफाएड योग्य डाक्टर को जरूरत है।

जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर, होशियारपुर।

BOOK POST

Regd No. 26265/74
MANAV MANDIR

AUG. 10th 1993
PB HSP—5

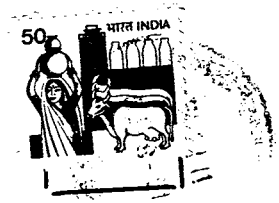

Address

2631. Thakur Bahadur Singh,
H.No. 4-7-90 Kumarpalli,
Post. Hanamkonda,
Distt. Warangal (A.P)

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR, 146 001
PHONE : 22639

Shiv Dev Rao Press Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)